आत्मधर्म

श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ का मुखपत्र

९१वें जन्म-दिवस पर :

जिनके मुख से हरदम झरता समयसार का सार है।
श्री कानजी स्वामीजी का अभिनन्दन शत बार है॥

सम्पादक : डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल
कार्यालय : टोडरमल स्मारक भवन, ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४

आत्मधर्म [४१८]

[हिन्दी, गुजराती, मराठी, तामिल तथा कन्नड़ — इन पाँच भाषाओं में प्रकाशित
जैन समाज का सर्वाधिक बिक्रीवाला आध्यात्मिक मासिक]

संपादक :
डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल

प्रबंध संपादक :
अखिल बंसल

कार्यालय :
श्री टोडरमल स्मारक भवन
ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४

प्रकाशक :
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (भावनगर-गुजरात)

शुल्क :
आजीवन : १०१ रुपये
वार्षिक : ६ रुपये
एक प्रति : ५० पैसे

मुद्रक :
सोहनलाल जैन
जयपुर प्रिण्टर्स, जयपुर

कहाँ / क्या

१ श्री कानजी स्वामी का....
२ ४५ + ४५ = ९० ९१ वीं....
३ संपादकीय : जिनवरस्य नयचक्रम
४ णत्थि मम को वि मोहो
[समयसार प्रवचन]
५ हेय और उपादेय
[नियमसार प्रवचन]
६ द्रव्यसंग्रह प्रवचन
७ ज्ञान-गोष्ठी
८ हेतु की विपरीतता
९ समाचार दर्शन
१० अभिमत

छपते-छपते

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का स्वास्थ्य अब ठीक है। दिनांक ९-४-१९८० से मलाड़ (बम्बई) में उनके प्रवचन भी प्रारंभ हो गये हैं। पूर्वनिश्चित कार्यक्रमानुसार उनकी जन्म-जयंती दिनांक १६-४-१९८०को वहाँ विशाल समारोह के साथ मनाई जावेगी। — **संपादक**

आ त्म ध र्म

शाश्वत सुख का, आत्म शान्ति का, प्रगट करे जो मर्म।
समयसार का सार, सभी को प्रिय, यह आतम धर्म॥

वर्ष : ३५ [४१८] अंक : १०

९१वीं जन्म-जयंती के अवसर पर

श्री कानजीस्वामी का अभिनंदन शतबार है।

जिनके मुख से हरदम झरता समयसार का सार है।
श्री कानजीस्वामीजी का अभिनंदन शतबार है॥

जिनने देश-विदेशों में जा जैनध्वजा को फहराया।
आध्यात्म का डंका जिनने द्वार-द्वार पर बजवाया॥
सिर्फ तत्त्वचर्चा का ही चलता जिनका व्यापार है।
श्री कानजीस्वामीजी का अभिनंदन शतबार है॥

चौथाकाल वर्तने लगता आप जहाँ पर जाते हैं।
भक्तजनों को आध्यात्मरस में सरावोर कराते हैं॥
ज्ञानामृत पीते श्रोता जब बहे धर्म की धार है।
श्री कानजीस्वामीजी का अभिनंदन शतबार है॥

आज विश्व के लिए आप खुद चलते-फिरते तीरथ हैं।
धर्मांधों को पार लगाने जन्मे फिर भागीरथ हैं॥
रहते दूर विवादों से तृणवत् तुमको संसार है।
श्री कानजीस्वामीजी का अभिनंदन शतबार है॥

धर्म-विमुख लोगों को तुमने सही मार्ग पर लगा दिया।
तत्त्व-विवेचन से सम्यक्दर्शन का दर्शन करा दिया॥
ऐसे संतों को 'काका' का नमन अनेकों बार है।
श्री कानजीस्वामीजी का अभिनंदन शतबार है॥

— हजारीलाल जैन 'काका'

४५+४५=९० * ९१वीं जन्म-जयंती

आध्यात्मिक सत्पुरुष पूज्य श्री कानजीस्वामी का ९१वाँ जन्म-दिवस वैशाख शुक्ला २ तद्नुसार १६-४-१९८० को बम्बई के उपनगर मलाड़ में एक विशाल समारोह के साथ बड़े ही उत्साह से मनाया जा रहा है।

वे आगामी अक्षयतृतीया के एक दिन पूर्व ही अपने जीवन के ९० वर्ष पूर्ण कर रहे हैं। उन्होंने दिगंबर जिनधर्म को कुलधर्म के रूप में नहीं, अपितु कुलधर्म को तिलांजलि देकर समझ-बूझकर अत्यंत पुरुषार्थपूर्वक एक क्रांति के रूप में स्वीकार किया है।

आज से ४५ वर्ष पूर्व महावीर जयंती के दिन यह महान क्रांति संभावित हुई थी। इसप्रकार पूज्य स्वामीजी के आरंभिक ४५ वर्ष तो स्थानकवासी संप्रदाय में गये तथा ४५ वर्ष दिगंबर जिनधर्म की सतत् आराधना एवं प्रचार द्वारा स्वपर-हित में बीते हैं।

इसप्रकार आप अब ४५+४५=९० वर्ष की सीमा पार कर ९१वें वर्ष में प्रवेश कर रहे हैं।

जब हम यह विचार करते हैं कि दिगंबर धर्म के क्षितिज पर इस युग में यदि कानजीस्वामी का उदय नहीं होता तो क्या होता? तब स्पष्ट प्रतीत होता है कि वीतराग जिनधर्म का मर्म अनुद्घाटित ही रह जाता; धर्म के पावन स्थान पर राग ही प्रतिष्ठित रहता, पुण्य ही प्रतिष्ठित रहता। इसकी चर्चा भी कहाँ थी कि धर्म पुण्य-पाप से परे, शुभाशुभ राग से परे, वीतरागभाव का नाम है।

'क्रमबद्धपर्याय' के नाम से भी कौन परिचित था? निमित्ताधीन दृष्टि का ही बोलबाला था। अब चाहे जो कुछ भी क्यों न कहें, पर वस्तुस्थिति से अपरिचित कोई भी नहीं है।

अब भी कितने लोगों को यह सब स्वीकार है? कितने लोग इस मर्म को पचा पा रहे हैं?

पूज्य स्वामीजी ने जिस विस्मृत तत्त्व का उद्घाटन किया है, स्मरण कराया है; जिसे वह जम गया, पच गया, उसमें जो समा गया; वह परमतत्त्व को प्राप्त किये बिना नहीं रहेगा।

परमतत्त्व के प्रतिपादक परमकृपालु स्वामीजी के ९१वें जन्म-दिवस के पावन अवसर पर उन्हें हम शत्-शत् वंदन करते हैं, उनके शतायु होने की कामना करते हैं, भावना भाते हैं।

— संपादक

नयज्ञान की आवश्यकता

जिनागम के मर्म को समझने के लिये नयों का स्वरूप समझना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है; क्योंकि समस्त जिनागम नयों की भाषा में ही निबद्ध है। नयों को समझे बिना जिनागम का मर्म जान पाना तो बहुत दूर, उसमें प्रवेश भी संभव नहीं है।

जिनागम के अभ्यास (पठन-पाठन) में संपूर्ण जीवन लगा देनेवाले विद्वज्जन भी नयों के सम्यक् प्रयोग से अपरिचित होने के कारण जब जिनागम के मर्म तक नहीं पहुँच पाते तब सामान्यजन की तो बात ही क्या करना ?

'धवला' में कहा है:—

''णत्थि णएहिं विहूणं सुत्तं अत्थोव्व जिनवरमदम्हि।
तो णयवादे णिउणा मुणिणो सिद्धंतिया होंति॥६८॥[१]

जिनेंद्र भगवान के मत में नयवाद के बिना सूत्र और अर्थ कुछ भी नहीं कहा गया है। इसलिये जो मुनि नयवाद में निपुण होते हैं, वे सच्चे सिद्धांत के ज्ञाता समझने चाहिये।''

'द्रव्यस्वभावप्रकाशक नयचक्र' में भी कहा है :—

''जे णयदिट्ठिविहीणा ताण ण वत्थसुहावउवलद्धि।
वत्थुसहावविहूणा सम्मादिट्ठी कहं हुति॥१८१॥

जो व्यक्ति नयदृष्टि से विहीन हैं, उन्हें वस्तुस्वरूप का सही ज्ञान नहीं हो सकता। और वस्तु के स्वरूप को नहीं जाननेवाले सम्यग्दृष्टि कैसे हो सकते हैं ?''

---

१. धवला पुस्तक १, खंड १, गाथा ६८ [जैनेंद्र सिद्धांतकोश, भाग २, पृष्ठ ५१८]

अनादिकालीन मिथ्यात्व की ग्रंथि का भेदन आत्मानुभवन के बिना संभव नहीं है, और आत्मानुभवन आत्मपरिज्ञानपूर्वक होता है। अनंत धर्मात्मक अर्थात् अनेकांतस्वरूप आत्मा का सम्यग्ज्ञान नयों के द्वारा ही होता है। **अनेकांत को नयमूलक कहा गया है।**[१] अतः यह निश्चित है कि मिथ्यात्व की ग्रंथि का भेदन चतुराई से चलाये गए नयचक्र से ही संभव है।

नयों की चर्चा को ही सब झगड़ों की जड़ कहनेवालों को उक्त आगम वचनों पर ध्यान देना चाहिये। नयों का सम्यग्ज्ञान तो बहुत दूर, नयों की चर्चा से भी अरुचि रखनेवाले कुछ लोग यह कहते कहीं भी मिल जावेंगे कि "समाज में पहले तो कोई झगड़ा नहीं था, सब लोग शांति से रहते थे, पर जब से निश्चय-व्यवहार का नया चक्कर चला है, तब से ही गाँव-गाँव में झगड़े आरंभ हो गये हैं।"

ये लोग जानबूझकर 'नयचक्र' को 'नया चक्कर' कहकर मजाक उड़ाते हैं, समाज को भड़काते हैं।

जहाँ एक ओर कुछ लोग नयज्ञान का ही विरोध करते दिखाई देते हैं, वहाँ दूसरी ओर भी कुछ लोग नयों के स्वरूप और प्रयोग विधि में परिपक्वता प्राप्त किये बिना ही उनका यद्वा-तद्वा प्रयोग कर समाज के वातावरण को अनजाने ही दूषित कर रहे हैं।

उन्हें भी इस ओर ध्यान देना चाहिये कि आचार्य अमृतचंद्र ने जिनेंद्र भगवान के नयचक्र को अत्यंत तीक्ष्ण धारवाला और दुःसाध्य कहा है।[२] पर ध्यान रखने की बात यह है कि दुःसाध्य कहा है, असाध्य नहीं। अतः निराश होने की आवश्यकता नहीं है, किंतु सावधानीपूर्वक समझने की आवश्यकता अवश्य है। क्योंकि वह नयचक्र अत्यंत ही तीक्ष्ण धारवाला है। यदि उसका सही प्रयोग करना नहीं आया तो लाभ के स्थान पर हानि भी हो सकती है।

पुरुषार्थसिद्ध्युपाय के ५९वें श्लोक की टीका के भावार्थ में सचेत करते हुए आचार्यकल्प पंडित टोडरमलजी लिखते हैं :—

---

१. **जह सत्थाणं माई सम्मत्तं जह तावइगुणणिलए।**
धाउवाए रसो तह णयमूलं अणेयंते॥१७५॥
जैसे शास्त्रों का मूल अकारादि वर्ण हैं, तप आदि गुणों के भंडार साधु में सम्यक्त्व है, धातुवाद में पारा है; वैसे ही अनेकांत का मूल नय है। — द्रव्यस्वभावप्रकाशक नयचक्र, गाथा १७५

२. **अत्यंत निशितधारं दुरासदं जिनवरस्य नयचक्रम्।**

''जैनमत का नयभेद समझना अत्यंत कठिन है, जो कोई मूढ़ पुरुष बिना समझे नयचक्र में प्रवेश करता है, वह लाभ के बदले हानि उठाता है।''

वीतरागी जिनधर्म के मर्म को समझने के लिये नयचक्र में प्रवेश अर्थात् नयों का सही स्वरूप समझना अत्यंत आवश्यक है; उनके प्रयोग की विधि से मात्र परिचित होना ही आवश्यक नहीं, अपितु उसमें कुशलता प्राप्त करना जरूरी है।

जिसप्रकार अत्यंत तीक्ष्ण धारवाली तलवार से बालकवत् खेलना खतरे से खाली नहीं है; उसीप्रकार अत्यंत तीक्ष्ण धारवाले नयचक्र का यद्वा-तद्वा प्रयोग भी कम खतरनाक नहीं है। जिसप्रकार यदि तलवार चलाना सीखना है तो सुयोग्य गुरु के निर्देशन में विधिपूर्वक सावधानी से सीखना चाहिये; उसीप्रकार नयों की प्रयोग विधि में कुशलता प्राप्त करने के लिये भी नयचक्र के संचालन में चतुर गुरु ही शरण है।

कहा भी है :—

गुरवो भवंति शरणं प्रबुद्धनयचक्रसंचाराः[१]

क्योंकि :—

''मुख्योपचार विवरण निरस्तदुस्तरविनेयदुर्बोधा
वयवहार-निश्चयज्ञाः प्रवर्तयंते जगति तीर्थम्॥[२]

मुख्य और उपचार कथन से शिष्यों के दुर्निवार अज्ञानभाव को नष्ट कर दिया है जिन्होंने और जो निश्चय-व्यवहार नयों के विशेषज्ञ हैं, वे गुरु ही जगत में धर्मतीर्थ का प्रवर्तन करते हैं।''

जिनोदित नयचक्र की विस्तृत चर्चा करने के पूर्व सभी पक्षों से मेरा हार्दिक अनुरोध है कि अरे भाई! जैनदर्शन की इस अद्भुत कथनशैली को चक्कर मत कहो, यह तो संसारचक्र से निकालनेवाला अनुपम चक्र है। इसे समझने का सही प्रयत्न करो, इसे समझे बिना संसार के दुःखों से बचने का कोई उपाय नहीं है। इसे मजाक की वस्तु मत बनाओ, सामाजिक राजनीति में भी इस गंभीर विषय को मत घसीटो। इसका यद्वा-तद्वा प्रयोग भी मत करो, इसे समझो, इसकी प्रयोग विधि में कुशलता प्राप्त करो—इसमें ही सार है और सब तो संसार है व संसार-परिभ्रमण का ही साधन है।

---

१. पुरुषार्थसिद्धि युपाय, श्लोक ५८

२. वही, श्लोक ४

नयों के स्वरूप कथन की आवश्यकता और उपयोगिता प्रतिपादित करते हुए आचार्य देवसेन लिखते हैं :—

''यद्यप्यात्मा स्वभाने नयपक्षातीतस्तथापि स तेन बिना तथाविधो न भवितुमर्हत्यनादि-कर्मवशादसत्कल्पनात्मकत्वादतो नयलक्षणमुच्यते।[१]

यद्यपि आत्मा स्वभाव से नयपक्षातीत है, तथापि वह आत्मा नयज्ञान के बिना पर्याय में नयपक्षातीत होने में समर्थ नहीं है, अर्थात् विकल्पात्मक नयज्ञान के बिना निर्विकल्पक (नयपक्षातीत) आत्मानुभूति संभव नहीं है, क्योंकि अनादिकालीन कर्मवश से यह असत् कल्पनाओं में उलझा हुआ है। अत: सत्कल्पनारूप अर्थात् सम्यक् विकल्पात्मक नयों का स्वरूप कहते हैं।''

नयों के स्वरूप को जानने की प्रेरणा देते हुए माइल्लधवल लिखते हैं :—

''जइ इच्छह उत्तरिंदु अण्णाणमहोवहिं सुलीलाए।
ता णादुं कुणह मइं णयचक्के दुणयतिमिरमत्तण्डे॥[२]

यदि लीला मात्र से अज्ञानरूपी समुद्र को पार करने की इच्छा है तो दुर्नयरूपी अंधकार के लिये सूर्य के समान नयचक्र को जानने में अपनी बुद्धि को लगाओ।''

क्योंकि :—

''लवणं व इणं भणियं णयचक्कं सयलसत्थसुद्धियरं।
सम्मा वि य सुअ मिच्छा जीवाणं सुणयमग्गरहियाणं॥[३]

जैसे नमक सब व्यंजनों को शुद्ध कर देता है, सुस्वाद बना देता है; वैसे ही समस्त शास्त्रों की शुद्धि का कर्ता इस नयचक्र को कहा है। सुनय के ज्ञान से रहित जीवों के लिये सम्यक्श्रुत भी मिथ्या हो जाता है।'' [क्रमश:]

---

१. श्रुतभवदीपक नयचक्र, पृष्ठ २९
२. द्रव्यस्वभावप्रकाशक नयचक्र, गाथा ४१९
३ द्रव्यस्वभावप्रकाशक नयचक्र, गाथा ४१७

णत्थि मम को वि मोहो

परमपूज्य आचार्य कुंदकुंद के सर्वोत्तम ग्रंथराज 'समयसार' की छत्तीसवीं गाथा और उसमें समागत तीसवें कलश पर हुए पूज्य कानजीस्वामी के प्रवचनों का सार यहाँ दिया जा रहा है। मूलगाथा इसप्रकार है :—

णत्थि मम को वि मोहो बुज्झदि उवओग एव अहमिक्को।
तं मोहणिम्ममत्तं समयस्स वियाणया विंति॥३६॥

मोह मेरा कुछ भी नहीं है, मैं एक उपयोग ही हूँ—जो ऐसा जानता है उसे (उस जानने को) सिद्धांत अथवा स्व-पर-स्वरूप के ज्ञायक (पुरुष) मोह से निर्ममत्व कहते हैं।

इस गाथा में आचार्यदेव उपयोगस्वभावी आत्मा तथा मोह में पृथकत्व बतलाते हैं।

पैंतीसवीं गाथ्णा में परभाव के त्याग का स्वरूप धोबी के यहाँ से दूसरे की चादर को अपनी समझकर लानेवाले पुरुष का उदाहरण देकर समझाया था। इसे सुनते ही शिष्य तत्काल अपने स्वरूप का अनुभव कर लेता है।

यहाँ शिष्य **प्रश्न** करता है कि ऐसी अनुभूति से परभाव का भेदज्ञान कैसे हुआ?

इस शंका का **समाधान** करते हुए इस गाथा में मोह के उदयरूप भावकभाव से भेदज्ञान का स्वरूप बताते हैं।

आत्मा की अनुभूति होने पर धर्मात्मा मोह को अपने से भिन्न जानते हैं। शुभाशुभ परभावों से लाभ मानना भावमोह है तथा उसमें निमित्तरूप द्रव्यकर्म द्रव्यमोह है। यह मोह मेरा कुछ भी नहीं है, मैं तो उपयोगस्वरूप ही हूँ। यहाँ निर्मल उपयोग अर्थात् जानने-देखनेरूप निर्मल पर्याय की बात है। अंतर में त्रिकालनिर्मल द्रव्य, गुण और कारणशुद्धपर्याय विद्यमान है, उस पर दृष्टि करने से निर्मल पर्याय प्रगट होती है। जानने-देखनेरूप उपयोग ही मैं हूँ—ऐसा जानने को सिद्धांत के जाननेवाले पुरुष मोह से निर्ममता कहते हैं।

मोहनीयकर्म फल देने की सामर्थ्य से प्रगट होकर भावकरूप होता है और उसके

निमित्त से आत्मा की पर्याय में भाव्यरूप विकारी भाव उत्पन्न होता है। भावकरूप द्रव्यमोह और भाव्यरूप भावमोह निश्चय से मेरा कुछ भी नहीं है, मेरा उससे कोई भी संबंध नहीं है।

निर्मोह स्वभाव की दृष्टि के बल से ज्ञानी पर्याय में कर्म के निमित्त से होनेवाले विकार को अस्वीकार कर देते हैं; क्योंकि निर्मल ज्ञानस्वभाव विकार को उत्पन्न नहीं कर सकता तथा विकार भी निर्मल ज्ञान-दर्शन उपयोग को उत्पन्न नहीं करता। पुद्गल द्वारा मोह का भावक पुद्गलद्रव्य है, चैतन्यद्रव्य नहीं; इसलिये निश्चय से मोह मेरा कुछ भी नहीं है। इसप्रकार आत्मा के अनुभव के बल से ज्ञानी मोह से भेदज्ञान करके निर्मम होते हैं।

अज्ञानदशा में विकार के साथ तन्मयता थी, विकार का ही अनुभव था, इसलिये विकार से निर्ममता नहीं थी; परंतु अब निर्विकारी आत्मस्वभाव में तन्यमता होने से ज्ञानी स्पष्ट घोषणा करते हैं कि विकार से मेरा कोई नाता नहीं है। ज्ञानी को स्वप्न में भी शरीर, मन, वाणी तथा विकार अपने भासित नहीं होते।

यद्यपि साधक को कर्म का संयोग है और उसके निमित्त से विकार होते हैं तथापि विकार आत्मा नहीं है। कर्म अजीव तत्त्व है, इसलिये उस तरफ झुकाव से होनेवाला विकार भी अजीव है, जीव नहीं। सच्चे देव-शास्त्र-गुरु की श्रद्धा तथा व्यवहाररत्नत्रय के परिणाम भी मोहरचित हैं, इसलिये उससे भी ज्ञानी का कोई संबंध नहीं।

यहाँ जड़कर्म विकार कराते हैं—ऐसा आशय नहीं है। ज्ञानी को भी विकार अपने पुरुषार्थ की कमजोरी से होता है। जड़कर्म विकार कराते हैं—ऐसा मानना अज्ञान है। ज्ञानी की दृष्टि में विकार का आदर नहीं, ज्ञानस्वभाव का आदर है, इसलिये वे विकार को कर्म द्वारा रचित कहकर उससे मेरा कोई संबंध नहीं है, ऐसा जानते हैं।

परमार्थ से परभावों द्वारा टंकोत्कीर्ण एक ज्ञायकस्वभाव का भाना अशक्य है। मैं टंकोत्कीर्ण एक ज्ञानमूर्ति हूँ—ऐसी भावना विकार द्वारा होना अशक्य है। जिसप्रकार विकार द्वारा स्वभाव का होना अशक्य है; उसीप्रकार आत्मस्वभाव द्वारा विकार का होना अशक्य है। धर्मी जीव विचार करते हैं कि शुभाशुभ विकारी भाव मेरी उपज नहीं है, वह तो पुद्गल की उपज है। वर्तमान अवस्था में विद्यमान विकार भी मेरे स्वभाव का उत्पादक नहीं है। विकार द्वारा स्वभाव का होना तथा स्वभाव द्वारा विकार का होना अशक्य है।

आत्मा जगत् के पदार्थों को रचे ऐसा नहीं हो सकता। शरीर, मन, वाणी आदि तो प्रत्यक्ष

ही आत्मा से भिन्न हैं, और जड़ हैं, अत: आत्मा उनका रचियता कैसे हो सकता है ? रागादि विकार आत्मा में उत्पन्न होते हुए भी, स्वभाव से विरुद्ध हैं, इसलिये आत्मा द्वारा उनका रचा जाना अशक्य है।

भगवान आत्मा स्वयं विश्व को प्रकाशित करने में चतुर और विकासरूप निरंतर शाश्वत् प्रतापसंपत्तियुक्त चैतन्यशक्तिमात्र स्वभाव द्वारा परमार्थ से अपने को एकरूप ही जानता है।

भगवान आत्मा विश्व के समस्त पदार्थों को प्रकाशित करने में चतुर ऐसी चैतन्यशक्तिमात्र स्वभाववाला है। वह रागादिस्वरूप नहीं है, परंतु रागादि को जाननेवाला है। लोकालोक के समस्त पदार्थों तथा अपने में होनेवाले विकार और विकाररहित स्वभाव को जानना आत्मा का स्वभाव है। पुण्य-पाप आदि विकारी भाव इस चैतन्यस्वभाव को ढँक नहीं सकते—ऐसा स्वभाव का प्रताप है।

आत्मा निरंतर विकासरूप शाश्वत् प्रतापसंपदायुक्त है। पर्याय में विकारी वृत्तियाँ होते हुए भी चैतन्यस्वभाव विकाररूप नहीं होता, वह तो चैतन्यरूप ही रहता है, इसलिए चैतन्यस्वभाव को निरंतर प्रकाशमान कहा है। विकारी वृत्तियाँ तो क्षणिक हैं, परंतु चैतन्यस्वभाव शाश्वत् प्रतापसंपदारूप है। सच्ची संपदा और सुख आत्मा में ही है। चैतन्य संपदा ही वास्तविक संपदा है, क्योंकि वह शाश्वत् संपदा है। क्षणिक शुभभाव एवं उसके फलस्वरूप मिलनेवाली जड़ संपदा आत्मा की सच्ची संपदा नहीं है।

धर्मी जीव पर्याय में उत्पन्न होनेवाले विकार को गौण करके तथा त्रिकाली ज्ञानस्वभाव को मुख्य करके अपने को निरंतर प्रतापवंत अनुभव करते हैं। मेरी आत्म-संपदा ज्ञायकरूप है, विकार मेरी संपदा नहीं है, चैतन्यशक्तिरूप स्वभावभाव ही मेरी संपदा है, ऐसा धर्मी जानते हैं।

चैतन्यशक्तिमात्र स्वभाव के अनुभव से धर्मी अपने को एकरूप अनुभव करते हैं। यद्यपि समस्त द्रव्यों के परस्पर साधारण अवगाह का निवारण करना अशक्य होने से आत्मा और जड़ श्रीखंड की भाँति एकमेक हो रहे हैं, तथापि श्रीखंड की भाँति ही स्पष्ट अनुभव में आनेवाले स्वाद-भेद के कारण मैं मोह से निर्मम ही हूँ, क्योंकि प्रत्येक पदार्थ अपने एकत्व में प्राप्त होने से ज्यों का त्यों ही स्थित रहता है। इसप्रकार मोह से भेदज्ञान होने के कारण धर्मी मोह से निर्मम होते हैं।

देखो !धर्मी मोह से निर्मम कैसे होते हैं—यह बात यहाँ युक्तिपूर्वक समझाई जा रही है। कोई कहे कि इतनी सूक्ष्म बात हमारी समझ में नहीं आती। परंतु भाई ! दिनभर तो तेरा उपयोग धन्धा-व्यापार तथा विषय-कषाय में लगा रहता है; वाँचन, श्रवण, मनन के लिये तुझे समय भी नहीं मिलता तो फिर वाणी और विकल्पों से भी पार अतीन्द्रिय चैतन्यस्वभाव को पकड़ने लायक सूक्ष्मता तेरे ज्ञान में कैसे आयेगी ?

चौदह ब्रह्माण्ड में आत्मा तथा पुद्गलादि अन्य छह द्रव्य एक ही साथ रहते हैं। इन सभी द्रव्यों का परस्पर साधारण अवगाह अर्थात् आकाश के प्रदेशों के साथ-साथ रहना दूर नहीं किया जा सकता। यद्यपि सभी द्रव्य आकाश के प्रदेशों में एकसाथ रहते हैं, तथापि वे अपने-अपने लक्षणों से भिन्न-भिन्न जाने जाते हैं। उन्हें क्षेत्र से भिन्न करना अशक्य होते हुए भी ज्ञान में तो भिन्न-भिन्न जाना जा सकता है, क्योंकि प्रत्येक पदार्थ अपने स्वरूप से अभिन्न तथा पर से भिन्न है।

जिसप्रकार श्रीखंड में दही और शक्कर एकमेक रहते हैं; उसीप्रकार संसार-अवस्था में आत्मा और जड़शरीर तथा आठ कर्म एकमेक होकर हते हैं। संसार अवस्था में आत्मा और जड़शरीर को अलग-अलग करना अशक्य होते हुए भी जिसप्रकार स्वाद-भेद से श्रीखंड में दही और शक्कर की भिन्नता का ज्ञान किया जा सकता है; उसीप्रकार आत्मा और शरीर को भिन्न-भिन्न लक्षणों द्वारा भिन्न-भिन्न जाना जा सकता है।

देह और आत्मा आकाश में एकक्षेत्रावगाही होने पर भी उनके अपने-अपने प्रदेश भिन्न-भिन्न ही हैं, परंतु विकार तो आत्मा के प्रदेशों में ही उत्पन्न होनेवाली पर्याय है। आत्मा और राग को क्षेत्र से पृथक् नहीं किया जा सकता, परंतु स्पष्ट अनुभव में आनेवाले स्वाद-भेद के कारण दोनों की भिन्नता जानी जा सकती है। मोह के निमित्त से होनेवाले हर्ष-शोक का स्वाद आकुलतारूप है, मलिन है, तथा चैतन्यस्वभाव का स्वाद निराकुल अतीन्द्रिय आनंदरूप है। हर्ष-शोक के भाव दुखरूप हैं; तथा आत्मा का स्वाद आनंदरूप है।

धर्मी जानते हैं कि जड़ का स्वाद तो मैं ले ही नहीं सकता। विकार का स्वाद आकुलतारूप है तथा मेरा स्वाद निराकुल आनंदरस स्वरूप है। आकुलता और निराकुलता के स्वाद से ज्ञान और राग भिन्न-भिन्न हैं। कर्म निमित्त से होनेवाले भावकभाव का स्वाद और चैतन्य का स्वाद भिन्न-भिन्न है। देखो ! दोनों में स्वाद-भेद कहा, परंतु क्षेत्र-भेद नहीं कहा।

मैं तो ज्ञाता-दृष्टा हूँ, राग तो जड़ में होता है, मुझमें नहीं-ऐसा कोई कहे और थोड़ी सी अनुकूलता-प्रतिकूलता में राग-द्वेष करे तो वह मिथ्यादृष्टि है। राग-द्वेष अपने चैतन्य की अवस्था में ही होते हैं, जड़ में नहीं। ज्ञानी हो जाए और राग-द्वेष ज्यों के त्यों होते रहें, ऐसा नहीं होता। आत्मा का अनुभव होने पर अनंतानुबंधी कषाय दूर हो जाती है, सहज उदासीनता रहती है। रागादि एक निश्चित मर्यादा में ही होते हैं तथा स्वरूप-सन्मुखता का पुरुषार्थ वृद्धिंगत होते-होते उनका संपूर्ण अभाव हो जाता है।

ज्ञान सर्व समाधान कारक है। आत्मा में जब हर्ष-शोक की वृत्तियाँ उठती हैं, उसी समय ज्ञान समाधान करता है कि ये वृत्तियाँ मेरा स्वरूप नहीं है, मैं तो इनसे भिन्न चैतन्य-शक्तिमात्र हूँ। परोन्मुखी वृत्तियाँ मेरे स्वभाव में से उत्पन्न नहीं होतीं—ऐसा विचार कर धर्मी जीव विकार से लक्ष्य हटाकर स्वरूप-सम्मुख होते हैं। यही उनकी मोह से निर्ममता है।

अब इसी अर्थ का द्योतक कलशरूप काव्य कहते हैं:—

सर्वतः स्वरसनिर्भरभावं चेतये स्वयमहं स्वमिहैकम्।
नास्ति नास्ति मम कश्चन मोहः शुद्धचिद्घनमहोनिधिरस्मि॥३०॥

इस लोक में मैं स्वतः ही सर्वतः निजरसरूप चैतन्य के परिणमन से पूर्ण भरे हुए भाववाले अपने एक आत्मस्वरूप को ही अनुभव करता हूँ, इसलिये मोह मेरा कुछ भी नहीं लगता, मैं तो शुद्ध चैतन्यघनरूप तेजपुंज का निधि हूँ।

धर्मी जीव अपने चैतन्यस्वरूप में एकाग्र होता हुआ अपने स्वरूप को ही अनुभव करता है। आत्मा असंख्यप्रदेशी अखंड एक पदार्थ है और उसका प्रदेश-प्रदेश चैतन्यरस से भरपूर है। पुद्गल में खट्टा-मीठा आदि रस पाया जाता है, परंतु आत्मा चैतन्य शांति आनंद आदि रस से भरपूर है।

अज्ञानी को अपने चैतन्यरस की खबर नहीं है, वह तो जड़ के रस में ही तन्मय हो गया है। जड़ का रस आत्मा में प्रविष्ट नहीं हो जाता, परंतु वह अपने चैतन्यस्वभाव को भूलकर जड़ में ही एकाग्र हो जाता है। दूसरी चिंता छोड़कर एक ज्ञेय में तन्मय होने को रस कहते हैं। जड़ पदार्थों में तन्मय होकर अज्ञानी अपने विकार का ही वेदन करता है, परंतु मुझे जड़ में रस आया ऐसा मानता है।

अपने चैतन्यरस से परिपूर्ण स्वभाव में तन्मय होकर राग से भिन्न आत्मा के निराकुल

स्वाद का अनुभव ही निजरस है। पर-पदार्थों में रस है ही नहीं। मात्र क्षणभर के लिये पर में सुख भासित होता है, परंतु दूसरे ही क्षण अनंत दु:ख का वेदन होता है। अज्ञानी अनुकूल-प्रतिकूल संयोगों में सुख-दु:ख की कल्पना करता है, परंतु संयोग तो क्षणिक हैं। आत्मा अपने रस से भरपूर शाश्वत् तत्त्व है, उसमें तन्मय होने से पर्याय में निजरस प्रगट होता है।

चैतन्यरस के अनुभव से धर्मी जीव जानते हैं कि विकार का और मेरा कुछ भी संबंध नहीं है। मैं तो चैतन्यघनरूप तेजपुंज की निधि हूँ। मेरी चैतन्यनिधि में से शांति और सुख कभी कम नहीं होते। अपने शांतरस से भावकभाव को पृथक् जानकर चैतन्यस्वभाव में ही एकाग्र होना ही मोक्ष का उपाय है। चैतन्यस्वभाव में एकाग्र होने के लिये उसका निर्णय होना आवश्यक है। स्वभाव के निर्णय बिना उसमें एकाग्रता की ओर कदम नहीं बढ़ाए जा सकते।

स्वभाव के निर्णय के बल से धर्मी की दृष्टि विचक्षण हो जाती है। मोहकर्म मेरा कुछ भी नहीं है, मैं तो शुद्ध चिद्घन तेजपुंज हूँ—ऐसी मोह-निर्ममता विचक्षण दृष्टिवंत धर्मी जीवों को ही होती है।

पंडित बनारसीदासजी नाटक समयसार में लिखते हैं :—

कहै विचक्षन पुरुष सदा मैं एक हौं।
अपने रस सौं भर्यो आपनी टेक हौं॥
मोहकर्म मम नांहि नांहि भ्रमकूप है।
शुद्धचेतना सिंधु हमारो रूप है॥

इसप्रकार आचार्यदेव ने स्वभाव की दृष्टि के बल से भावकभाव से भेदज्ञान का स्वरूप बताया। यहाँ भावकभाव के अंतर्गत मोहभाव के भेद-ज्ञान का स्वरूप समझाया है। परंतु 'मोह' पद के स्थान पर राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ, कर्म, नोकर्म, मन, वचन, काय, श्रोत्र, चक्षु, घ्राण, रसना और स्पर्शन—इन सोहल पदों को रखकर मोह की भाँति इनसे भी भेदज्ञान का स्वरूप समझना चाहिये तथा इसी उपदेश से अन्य समस्त विकारी भावों से भेदज्ञान की विधि समझना चाहिये।

ज्ञानी स्वयं को राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ आदि विकारी भावों से भिन्न चैतन्यशक्तिस्वरूप अनुभव करते हैं। अपूर्णता और मलिनता में पर की अपेक्षा आती है, परंतु चैतन्य स्वभाव में तो रंग, राग और भेद से भी निरपेक्ष परिपूर्ण निर्मलरूप है। मैं तो ज्ञान, दर्शन,

आनंद आदि अनंत गुणों की खान हूँ—उसमें से मोह, राग, द्वेष नहीं निकलते, इसलिए मोह के साथ मेरा कुछ भी संबंध नहीं है।

जिस प्रकार मिश्री की डली में मिठास ही मिठास है, खारा स्वाद नहीं; उसीप्रकार चैतन्य पिंड आत्मा में ज्ञान आनंद आदि ही हैं, कषाय का स्वाद नहीं है। कषाय तो मोहकर्म का भाव्य है, मेरा भाव्य नहीं। यद्यपि ज्ञानी की पर्याय में ही अल्प क्रोध, मानादि कषायें होती हैं; तथापि उनकी दृष्टि अकषायी स्वभाव पर होती है, इसलिये वे कषायों से भिन्न ज्ञानमात्र का अनुभव करते हुए कषायों से निर्मम ही रहते हैं।

विकारी भावों के समान ज्ञानी कर्म तथा नोकर्म की अवस्थाओं को अपने से भिन्न जानते हैं। ज्ञान-दर्शन और वीर्य की हीनता, पर में सुख-दुःख की कल्पना, अस्थिरता आदि सभी पराश्रित पर्यायों का कर्म के साथ निमित्त-नैमित्तिक संबंध है। जब मेरी पर्याय में होनेवाले विकार के साथ मेरा कुछ भी संबंध नहीं है, तो आठ कर्म तथा नोकर्म के साथ कैसे हो सकता है ? द्रव्यदृष्टि में निमित्त-नैमित्तिक संबंध का अभाव है, इसलिये द्रव्यदृष्टिवंत ज्ञानी कर्म और नोकर्म के प्रति भी निर्मम है।

इसीप्रकार स्पर्शनादि इंद्रियाँ एवं उनके निमित्त से होनेवाला इंद्रियज्ञान भी मेरा कुछ नहीं लगता। इंद्रियाँ तो जड़ हैं ही, अल्पज्ञतारूप इंद्रियज्ञान भी मेरा नहीं है; मैं तो परिपूर्ण अतीन्द्रिय ज्ञानस्वभावी हूँ। इसप्रकार ज्ञानी सभी प्रकार की कषायों, कर्म, नोकर्म तथा इंद्रियों के प्रति निर्मम होते हैं।

इन सोलह पदों के अतिरिक्त असंख्य प्रकार के शुभाशुभ भावों से भी ज्ञानी निर्मम होते हैं, उनका ममत्व तो अपने चैतन्यस्वभाव में ही रहता है।

इसप्रकार अपने स्वरूप की अनुभूति से परभावों से भेदज्ञान कैसे होता है—यह बात इस गाथा में आचार्यदेव ने स्पष्ट की।

हेय और उपादेय

परमपूज्य दिगंबराचार्य कुंदकुंद के प्रसिद्ध परमागम 'नियमसार' की ५० वीं गाथा एवं उसमें समागत श्लोकों पर हुए पूज्य श्री कानजीस्वामी के प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है। मूलगाथा इसप्रकार है:—

पुव्वुत्तसयलभावा परदव्वं परसहावमिदि हेयं।
सगदव्वमुवादेयं अंतरतच्चं हवे अप्पा॥५०॥

पूर्वोक्त सर्वभाव परस्वभाव हैं, परद्रव्य हैं, इसलिये हेय हैं, अन्तःतत्त्व ऐसा स्वद्रव्य—आत्मा उपादेय है।

यह हेय-उपादेय अथवा त्याग-ग्रहण के स्वरूप का कथन है।

जो कुछ विभाव गुण-पर्यायें हैं, वे पहले (४९वीं गाथा में) व्यवहारनय के कथन द्वारा उपादेयरूप से कहने में आयी थीं, परंतु शुद्धनिश्चयनय के बल से (शुद्धनिश्चयनय से) वे सब हेय हैं। कारण कि वे परस्वभावी हैं और इसीलिए परद्रव्य हैं।

उदयभाव एक समय का विकारी भाव है, उपशम, क्षयोपशम और क्षायिकभाव एकसमय की निर्मल पर्यायें हैं। इन चारों भावों का ज्ञान करना चाहिये, इस अपेक्षा से व्यवहार से उन्हें उपादेय कहा था, परंतु त्रिकालीस्वभाव की दृष्टि से देखा जावे तो चारों भावों की ओर का लक्ष्य छोड़नेयोग्य है, क्योंकि उदयभाव विकार है, उस विकार से धर्म होता नहीं। उपशमभाव, क्षयोपशमभाव निर्मल पर्याय होने पर भी, पर्याय के लक्ष्य से राग होता है-धर्म नहीं होता, और क्षायिकभाव वर्तमान में प्रकट नहीं, और जो प्रकट नहीं है उसका विचार करने पर राग होता है, अतः उसकी तरफ का विकल्प भी छोड़नेयोग्य है। इस अपेक्षा से उन चारों भावों को परद्रव्य कहा है। केवली भगवान को कुछ समझना शेष नहीं है, उनके नय नहीं हैं। जिसको समझना शेष है ऐसे साधक को नय होते हैं, उसे पर्याय के ऊपर लक्ष्य करने से राग होता है, इसलिये उन चारों भावों के ऊपर से लक्ष्य छुड़ाया है।

समयसार गाथा ११ में कहा है कि व्यवहारनय अभूतार्थ है और भूतार्थ-शुद्धनय का आश्रय करनेवाला सम्यग्दृष्टि है। यहाँ भी यही कहना है कि त्रिकाली ध्रुवस्वभाव वह सामान्य

है और उदयादि चार भाव वे विशेष हैं। विशेष के अवलंबन से लाभ नहीं; इसलिए विशेष को परद्रव्य कहकर सामान्य एकरूप स्वभाव के आश्रय से लाभ है-ऐसा कहा है। जो जीव व्यवहार में रुचि रखते हैं-उनसे कहा कि उसके आश्रय से लाभ नहीं है, शुद्ध के आश्रय से लाभ है।

पैसा, कुटुंबादि परद्रव्य ही हैं, देव-गुरु-शास्त्र भी परद्रव्य है, और अपनी एकसमय की पर्याय को भी परद्रव्य कहा है, कारण कि उसका आश्रय लेने से मिथ्यात्व उत्पन्न होता है। एक चैतन्यस्वभाव अन्तः तत्त्व ही स्वद्रव्य है। किसी भी भक्ति या कृपा से धर्म हो अथवा राग और पुण्य के आश्रय से धर्म हो-ऐसा तो है ही नहीं, किंतु यहाँ तो कहते हैं कि तेरी पर्याय की कृपा से या उसके आश्रय से भी धर्म नहीं होता। पर्यायवान द्रव्यस्वभाव की कृपा से-उस एक की ही कृपा से धर्म होता है।

गाथा ३९ की टीका में कहा है कि "जीवादि सात तत्त्वों का समूह परद्रव्य होने से वास्तव में उपादेय नहीं हैं।" "मैं शुद्ध जीव हूँ"—ऐसा विकल्प भी परद्रव्य है। गाथा १०३ की टीका में "नौ पदार्थरूप परद्रव्य के...." कहकर नौ पदार्थ को परद्रव्य कहा है। एक शुद्ध अंतःतत्त्वरूप स्वद्रव्य उपादेय है। सर्व ही विभावभाव-औदयिकादि भावों से रहित शुद्धकारणपरमात्मा उपादेय है। यहाँ अंतःतत्त्व का अर्थ अंतरात्मा मत समझना। बहरात्मा, अंतरात्मा और परमात्मा—तीनों तो पर्यायें हैं, उनकी बात नहीं है, इन तीनों के बिना मात्र शुद्धस्वभाव, उत्पाद-व्यय रहित कारणपरमात्मा उपादेय है, क्योंकि उसी के आश्रय से लाभ होता है, इसलिए उसे ही स्वद्रव्य कहा है। व्यवहाररत्नत्रय, पाँच महाव्रत के विकल्प अथवा उपशमादि चार भावों के आश्रय से लाभ नहीं है, उससे राग होता है—धर्म नहीं होता, इसलिये परद्रव्य कहा है।

यहाँ कोई **प्रश्न** करे कि क्षायिकादिभाव को परद्रव्य क्यों कहा?

समाधान :- भाई, सुना! उन भावों का विचार करने पर राग उत्पन्न होता है, अतः पर्यायबुद्धि छुड़ाने के प्रयोजन से उसे व्यवहार कहकर, गौण करके, अभूतार्थ कहा, परद्रव्य कहा, हेय कहा। और भूतार्थ शुद्धनय को स्वद्रव्य कहकर उपादेय कहा, कारण कि उसके आश्रय से धर्म होता है।

सहजज्ञान, दर्शन, चारित्र, सुखरूप अंत:तत्त्व का आधार शुद्धकारणपरमात्मा है।

अब, वह अंत:तत्त्व कैसा है? ''वास्तव में सहजज्ञान, सहजदर्शन, सहजचारित्र, सहज परमवीतरागसुखात्मक शुद्धअंत:तत्त्वस्वरूप इस स्वद्रव्य का आधार सहजपरमपारिणामिकभावलक्षण कारणसमयसार है।''

त्रिकाली सहजज्ञान, सहजदर्शन, सहजचारित्र, सहजपरमवीतरागी सुखरूप अंत:तत्त्व है। शुद्धभाव, शुद्धस्वभावभाव है और उसका आधार परमपारिणामिकभावलक्षण कारणसमयसार है। सहजज्ञान-दर्शन कहकर भिन्न-भिन्न गुणों के भेद समझाये थे। उनका आधार कारणपरमात्मा कहकर अभेद कह दिया। स्वद्रव्य में ज्ञानदर्शनादि चार भेद से समझाया है। और उनको अभेद करके कारणसमयसार कहा। यही सम्यग्दर्शन के लिये उपाय है—यही धर्म का कारण है।

वास्तव में शुद्धअंत:तत्त्वस्वरूप कारणपरमात्मा उपादेय है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय अथवा मोक्ष की पर्याय भी आदरणीय नहीं, कारण कि वह कार्यरूप है; कार्य में से कार्य प्रकट होता नहीं, अथवा पर्याय में से पर्याय आती नहीं; इसलिये स्वभाव शुद्ध त्रिकाल एकरूप है—वह कारण है, उसमें से कार्य आया है। कार्य उपादेय नहीं, किंतु कारणपरमात्मा उपादेय है। पर्याय के ऊपर का लक्ष्य छुड़ाने के प्रयोजन से उस पर्याय को परद्रव्य कहकर, एकरूप शुद्धस्वभाव को स्वद्रव्य मानकर आदरणीय कहा है।

इसीप्रकार आचार्य अमृतचंद्रदेव ने समयसार की आत्मख्याति टीका में १८५वें श्लोक में कहा है कि:—

सिद्धांतोऽयमुदात्तचित्तचरितैर्मोक्षार्थिभिः सेव्यतां
शुद्धं चिन्मयमेकमेव परमं ज्योतिः सदैवास्म्यहम्।
एते ये तु समुल्लसन्ति विविधा भावाः पृथग्लक्षणा-
स्तेऽहं नास्मि यतोऽत्र ते मम परद्रव्यं समग्रा अपि॥१८५॥

जिसके चित्त का चारित्र उदात्त (उदार-उच्च-उज्ज्वल) है—ऐसे मोक्षार्थी इस सिद्धांत का सेवन करो कि ''मैं तो शुद्ध चैतन्यमय एक परमज्योति ही सदा हूँ, और यह भिन्न लक्षणवाले विविध प्रकार के प्रकट होनेवाले भाव हैं, वह मैं नहीं हूँ, कारण कि वे सब मुझे परद्रव्य हैं।''

मोक्षार्थी जीवों को एकरूप शुद्धस्वभाव का सदा सेवन करना चाहिये।

जिन जीवों के ज्ञान का अभिप्राय उज्ज्वल है, उदार है, उन जीवों का क्या करना? ऐसे जीवों को यह सिद्धांत सेवन करना चाहिये कि मैं तो शुद्ध ज्ञानमय हूँ और ऐसा माननेवाला उदार है। जो जीव निमित्त से, व्यवहार से, पुण्य से, धर्म मानते हैं, उनका अभिप्राय उदार नहीं है, अतः व्यवहार से धर्म मत मानो। किंतु मैं त्रिकाल एकरूप शुद्धआत्मा हूँ, कारणपरमात्मा हूँ, मेरे आधार से ही धर्मदशा प्रकट होकर मोक्ष होगा, यह एक ही सिद्धांत अंगीकार करने जैसा है। जिसप्रकार अग्नि खराब वस्तु को जला देती है; उसीप्रकार परमज्योतिरूप ज्ञानाग्नि हीन अवस्था को तथा विकार को जला देने में समर्थ है। संसारी और सिद्ध के भेद व्यवहारनय के विषय में जाते हैं, शुद्धनिश्चयनय से मेरे में और सिद्ध में कोई भेद नहीं है। मैं तो ज्ञायकस्वभावी हूँ—ऐसी वाणी ज्ञानी के मुख से निकले, वह वाणी सम्यग्दर्शन में निमित्त होती है। तथा जो अपने में सम्यग्दर्शन प्रकट करे उसको ज्ञानी और वाणी निमित्त कहे जाते हैं।

पर्याय में होनेवाले शुद्ध-अशुद्धभाव अनेकता उत्पन्न करते हैं, इसलिये वे परद्रव्य हैं। उनका लक्ष्य छोड़नेयोग्य है।

और जो भिन्न-भिन्न लक्षणवाले दया-दान-हिंसा-झूठ-चोरी आदि के भाव होते हैं-वे मैं नहीं हूँ तथा जो नई-नई निर्मल पर्यायें उत्पन्न होती हैं—वे भी मैं नहीं हूँ, कारण कि वे सब परद्रव्य हैं। निर्मलारूपी कार्य पर्याय में होता है, किंतु पर्याय से पर्याय प्रकट नहीं होती, अतः पर्याय को परद्रव्य कहा है। जब पर्याय स्वद्रव्य की तरफ ढलती है तब धर्मदशा प्रकट होती है, इसलिए त्रिकाली स्वभाव को स्वद्रव्य कहा है।

यहाँ यह बताया है कि जिसको दानी बनना हो अर्थात् अपनी निर्मल पर्याय का दान अपने को देना हो वह इस अभिप्राय का सेवन करे कि एकसमय की पर्याय जाननेयोग्य तो है, किंतु आदर करनेयोग्य नहीं है। व्यवहाररत्नत्रय का पुण्य-परिणाम भी उदार नहीं है और एकसमय की पर्याय भी उदार नहीं है, त्रिकालीस्वभाव एक ही उदार और आदर करनेयोग्य है। पर्याय तो एक के बाद एक होती है, उसके लक्ष्य से अनेकता होती है, अतः सभी पर्यायें परद्रव्य हैं। इसलिये अनेक का लक्ष्य छोड़कर एकरूप द्रव्य की श्रद्धा-ज्ञान करो—यही एक धर्म का कारण है।

अब, ५०वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं:—

न ह्यस्माकं शुद्धजीवास्तिकाया-
दन्ये सर्वे पुद्गलद्रव्यभावाः।
इत्थं व्यक्तं वक्ति यस्तत्त्ववेदी
सिद्धिं सोऽयं याति तामत्यपूर्वाम्॥७४॥

''शुद्धजीवास्तिकाय से अन्य—ऐसे जो सब पुद्गलद्रव्य के भाव वे वास्तव में हमारे नहीं हैं''—ऐसा जो तत्त्ववेदी स्पष्टरूप से कहते हैं वे अति अपूर्व सिद्धि प्राप्त करते हैं।

जो तत्त्ववेदी शुद्धजीव को अपना माने तथा शेष भावों को पर माने वह मोक्षदशा को पाता है।

यहाँ शुद्धजीवास्तिकाय शब्द प्रयोग किया है, उसका अभिप्राय ऐसा है कि प्रत्येक जीव शुद्ध और असंख्यप्रदेशी हैं। शुद्धजीवास्तिकाय कहो, कारणसमयसार कहो, त्रिकाल ध्रुवस्वभाव कहो, नित्य कहो, त्रिकालकारणशुद्धजीव कहो, सभी एकार्थवाचक हैं। शुद्धजीव के अतिरिक्त पर्याय में होनेवाले दया-दानादि के भाव वास्तव में हमारे नहीं हैं, विकार तथा ज्ञान का हीनपना भी हमारा स्वरूप नहीं है; यह सब पुद्गल के लक्ष्य से होनेवाले भाव हैं, अतः पुद्गलद्रव्य के ही भाव हैं, शुद्धजीव के भाव नहीं हैं—ऐसा तत्त्व के ज्ञायक स्पष्टतया कहते हैं अर्थात् मानते हैं और वे ही पूर्व में कभी नहीं प्रकट हुई ऐसी मुक्तिदशा को पाते हैं।

यहाँ 'कहते हैं' शब्द में वाणी पर जोर देना नहीं है, किंतु वाणी के पीछे वाच्य का जोर बताना है। स्वयं शुद्धचैतन्यस्वभाव को ही आदरणीय मानते हैं—ऐसे तत्त्ववेदी सच्ची बात जगत से कहते हैं कि तुझे अपने जीव के आश्रय के अतिरिक्त अन्यत्र तीन काल में भी मुक्ति नहीं। इसके फल में साधारण सिद्धि अर्थात् मात्र सम्यग्दर्शन की बात नहीं, किंतु पूर्ण परम मोक्षदशा की बात है।

द्रव्यसंग्रह प्रवचन

वृहद्द्रव्यसंग्रह पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचन सन् १९५२ में हुए थे। जिज्ञासु पाठकों के लाभार्थ उन्हें यहाँ क्रमशः दिया जा रहा है।

[गतांक से आगे]

[गतांक से आगे]

प्रश्न - जीव-पुद्गल आदि द्रव्यों के परिणमन में सहकारी कारण कालद्रव्य है, पर कालद्रव्य के परिणमन में सहकारी कारण कौन है ?

उत्तर - जिसप्रकार आकाशद्रव्य सभी द्रव्यों को अवगाह देने में निमित्त होता हुआ अपने अवगाह का आधार स्वयं ही है; उसीप्रकार कालद्रव्य शेष सभी द्रव्यों के परिणमन में निमित्त होता हुआ अपने परिणमन में स्वयं निमित्त है।

प्रश्न - जैसे कालद्रव्य अपने परिणमन में स्वयं उपादान कारण और स्वयं निमित्त कारण है; वैसे ही जीवादि प्रत्येक द्रव्य को भी अपने-अपने परिणमन में उपादान कारण और निमित्त मानना चाहिये। उनके प्रति कालद्रव्य को निमित्त कारण मानने से क्या लाभ ?

उत्तर - आगम की श्रद्धा होती है, कालद्रव्य को सहकारी कारण मानने से यही लाभ है। अपने सिवाय बाह्य सहकारी कारणों से कोई प्रयोजन नहीं है, यदि ऐसा माना जाये तो जीव और पुद्गल की गति में धर्मद्रव्य तथा स्थिति में अधर्मद्रव्य के सहकारीपने की और सभी द्रव्यों के अवगाह में आकाशद्रव्य के सहकारीपने की आवश्यकता नहीं रहेगी।

निष्कर्ष यह है कि कालद्रव्य को परिणमन में सहकारी कारण न मानने पर अन्य द्रव्य भी एक-दूसरे के सहकारी कारण नीं रह सकेंगे और आगम से विरोध प्राप्त होगा।

धर्मादि द्रव्यों की पर्यायें प्रत्यक्ष दिखाई नहीं देती हैं, उनका ज्ञान तो आगम के अनुसार ही होता है। घड़ी, घण्टा, दिन आदि काल की पर्यायें स्पष्ट जानने में आती हैं, यदि उन पर्यायों के कारणभूत कालाणु को ही स्वीकार नहीं करेंगे तो फिर धर्म, अधर्म और आकाशद्रव्य का भी अभाव स्वीकार करना पड़ेगा। जो ठीक नहीं है।

प्रत्येक द्रव्य अपने अवगाहन में उपादान और निमित्त कारण स्वयं है, यदि ऐसा मानें तो आकाशद्रव्य का अभाव हो जायेगा। जीव और पुद्गल द्रव्यों की गति व स्थिति में उपादान और

निमित्त कारण जीव और पुद्गल द्रव्य ही मानें तो धर्म और अधर्मद्रव्य का अभाव होगा। और कालद्रव्य का अभाव मानने पर समय, घड़ी आदि का अभाव हो जायेगा। इन चारों द्रव्यों का अभाव मानने पर जीव और पुद्गल दो ही द्रव्य रहेंगे, तथा शास्त्र के कथन से बड़ा भारी विरोध आयेगा, क्योंकि शास्त्रों में तो जीव पुद्गल आदि छह द्रव्य कहे हैं।

सभी द्रव्यों के परिणमन में सहकारी कारण होने का गुण (सामर्थ्य) मात्र कालद्रव्य में है, अन्य द्रव्यों में नहीं। जिसप्रकार नाक में रस का स्वाद लेने की, काले-पीले आदि रंग देखने की और ठंडा-गरम आदि स्पर्श को जानने की सामर्थ्य नहीं है; उसीप्रकार काल से भिन्न द्रव्यों में अन्य द्रव्यों के परिणमन में सहकारी कारण बनने की सामर्थ्य नहीं है।

यदि एक द्रव्य के गुण दूसरे द्रव्य में माने जायें तो संकरदोष आता है। ऐसी हालत में जड़ और चेतन पदार्थ भिन्न-भिन्न नहीं बन सकते। जीव का ज्ञान पुद्गलादि द्रव्यों में और पुद्गलादि द्रव्यों का अचेतनत्व जीव में आ जायेगा। काल का परिणमन हेतुत्व, आकाश का अवगाहन हेतुत्व, अधर्मद्रव्य का स्थिति हेतुत्व, पुद्गल का स्पर्शादिपना और जीव का चेतनपना आदि गुण एक-दूसरे में आ जायें तो सभी द्रव्य एक जैसे हो जायेंगे, कोई भिन्नता नहीं रहेगी, इसप्रकार संकरदोष आयेगा जो ठीक नहीं है। अतः परिणमन हेतुत्व गुणवाले कालद्रव्य को ही अन्य सभी द्रव्यों के परिणमन में सहकारीकारण मानना चाहिये।

प्रश्न - शास्त्र के अनुसार जितने काल में एक परमाणु आकाश के एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश में गमन करता है, उतने काल को एक समय कहते हैं, यह काल के माप की इकाई है। परंतु शास्त्र में ऐसा भी कहा है कि एक परमाणु एकसमय में चौदह राजू गमन करता है, यह कैसे संभव है ?

उत्तर - जब एक परमाणु एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश में जाता है, तब एकसमय लगता है—यह कथन मंदगति अपेक्षा है। और एकसमय में ही चौदह राजू गमन करता है—यह कथन तीव्रगति अपेक्षा है। दृष्टांत इसप्रकार है—देवदत्त धीमीचाल से चले तो एक दिन में एक योजन के हिसाब से सौ योजन सौ दिन में जाता है, परंतु विद्या के प्रभाव से तेज चाल से चले तो सौ योजन एक दिन में जाता है। आजकल हवाई जहाज द्वारा भावनगर से बम्बई डेढ़ घंटे में पहुँचते हैं और रेलगाड़ी द्वारा २० घंटे में पहुँचते हैं। इसीप्रकार परमाणु भी तेज चाल से एकसमय में चौदह राजू गमन करता है और मंद चाल से एकसमय में एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश तक गमन करता है।

आत्मा का स्वभाव विषयों के अनुभव से रहित है। स्पर्श, रस, गंध, वर्ण आदि की तरफ झुकाव उसका विकारी परिणमन है, क्षणिक उपाधि है, आत्मा का शुद्धस्वरूप नहीं है। पर्याय में विकार का अनुभव होने पर भी द्रव्यस्वभाव उससे रहित है, शुद्ध ही है।—ऐसा जानकर भी जो विषयभोगों को चाहते हैं, उनके भोगने की इच्छा करते हैं, यह ठीक नहीं है, दुःख का कारण होने से अपध्यान है।

विषयों की अभिलाषा से रहित, विकल्प-जालों से मुक्त होकर अपने आत्मा की श्रद्धा, ज्ञान और रमणता करना अर्थात् अतीन्द्रिय आनंदरस का वेदन करनारूप वीतरागचारित्र के साथ जो सम्यग्दर्शन है, वही निश्चयसम्यग्दर्शन अथवा वीतरागसम्यग्दर्शन है।

सच्चे देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा करना सराग-सम्यग्दर्शन है, यह शुभराग वीतरागभावरूप निश्चय सम्यग्दर्शन का सहचारी है। रागरहित आत्मा की श्रद्धा करना निश्चय सम्यक्त्व है। छह द्रव्यों को मानना आदि व्यवहार सम्यक्त्व है, वह भी आवश्यक है, क्योंकि छह द्रव्यों की यथार्थ प्रतीति बिना निश्चयसम्यक्त्व नहीं होता है। आत्मा की निर्विकल्प प्रतीतिरूप निश्चयसम्यक्त्व सहित वीतरागीचारित्र लाभदायक है। यहाँ चारित्र की विशेष शुद्धता के काल में रहनेवाले सम्यक्त्व को वीतरागसम्यक्त्व कहा है।

कालादि छह द्रव्य हैं। जिन्हें स्वीकार न करने पर वस्तु का नाश नहीं होता, उसका कुछ भी नहीं बिगड़ता, अपितु स्वयं का ज्ञान खोटा हो जाता है।

मुक्ति का कारण आत्मा का त्रिकालीस्वभाव है, जिसका ज्ञान होने पर छह द्रव्यों की यथार्थ प्रतीति भी हो जाती है। काल की सिद्धि करके भी मुक्ति का कारण वीतरागसम्यक्त्व को ही बताया है, काल मुक्ति का कारण नहीं है।

पाँच इंद्रियों के विषयों का अनुभव करना आत्मा का स्वभाव नहीं है। स्वरूपस्थिरतापूर्वक परमानंद का अनुभव करना उसका स्वभाव है। परंतु अज्ञानी इसे भूलकर दूसरों की संपत्ति और भोगोपभोग पदार्थों को देखकर कल्पना करता है कि ऐसे संयोग मुझे भी मिल जावें तो बहुत अच्छा।

वही अज्ञानी प्रत्यक्ष दिखाई न देनेवाले देवताओं, इंद्रों आदि के वैभव का वर्णन शास्त्रों से सुनकर विचार करता है कि देवता इंद्र के ऊपर चमर ढुलाते हैं। अहो! कितना मनोहारी संयोग है, यदि मैं भी इन संयोगों में होता अर्थात् इंद्र होता तो कैसा रहता? .....इत्यादि

भावनायें भाता है, राग-द्वेष आदि के विकल्प करता है। खोटा ध्यान ऐसा ही होता है।

किसी करोड़पति को देखकर मैं भी करोड़पति हो जाऊँ, किसी के मधुर स्वर को सुनकर मेरा भी ऐसा ही स्वर हो, किसी की व्याख्यान शैली बढ़िया जानकर मेरी शैली भी ऐसी ही हो—इत्यादि विचार करना कुध्यान है।

अरे भाई! आत्मस्वभाव का अवलंबन चाहिये या संयोग चाहिये। सुख चाहिये या संयोगी भावों का दुःख।

अज्ञानी की दृष्टि संयोगों पर होने से उसे आत्मा की रुचि नहीं होती है, परंतु संयोग के कारणभूत पुण्य की भी सच्ची रुचि नहीं होती है; क्योंकि इंद्र, चक्रवर्ती संबंधी पुण्य आत्मा की रुचि हुए बिना नहीं बँधता है। चक्रवर्ती, इंद्र वगैरह का कथन शास्त्र में सुनकर अज्ञानी को गुदगुदाहट होती है। परंतु यह कथन ललचाने के लिये नहीं है, अपितु अज्ञानी जीव पुण्य-पाप के चक्कर में फँसकर अपने चैतन्य, आनंदघन, सुख के भंडार-स्वरूप आत्मस्वभाव को भूलकर दुःख भोगता है, यह बतलाने के लिये है।

दया, दान, व्रत, पूजा आदि सभी विकल्पों से रहित अपने ही शुद्धस्वभाव में सम्यग्दर्शन-ज्ञानपूर्वक जो स्थिरता होती है, उसे वीतरागीचारित्र कहते हैं।

वीतरागीचारित्र आत्मा के अतीन्द्रियरस का पान करने से अर्थात् स्वरूपरमणता से होता है, शास्त्र के ज्ञान से नहीं। इसका सहचारी सम्यक्त्व ही वीतरागसम्यक्त्व है।

यहाँ बहुत जीव ऐसा कहते हैं निश्चयसम्यक्त्व सातवें गुणस्थान में होता है, चौथे गुणस्थान में नहीं; पर यह बात सही नहीं है। निश्चयसम्यक्त्व चतुर्थ गुणस्थान से ही होता है। यहाँ सम्यग्दर्शन के बाद होनेवाले विशेष चारित्र की अपेक्षा है। अकेले निश्चसम्यग्दर्शन से मोक्ष नहीं होता है, यह बताने के लिये चारित्रप्रधान कथन किया है।

भूमिका में यथायोग्य शुभराग आता है, उसका अभाव स्वरूपरमणता द्वारा होता है और वीतरागता प्रगट होती है, कल्याण होता है।

इसप्रकार आत्मा की श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र अर्थात् सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र ही मुक्ति का कारण है—ऐसा समझकर जो मोक्षमार्ग प्रकट करते हैं, उसमें काल निमित्त कहा जाता है। निश्चयसम्यक्त्व प्रकट नहीं करने पर कालद्रव्य सहकारी कारण भी नहीं है। इसलिये कालद्रव्य हेय है।

यहाँ कालद्रव्य हेय है—ऐसा कहा। इससे कालद्रव्य निमित्त भी नहीं है—ऐसा नहीं मानना चाहिये। निमित्त से कार्य नहीं होता है, वह कर्ता नहीं है, यह अभिप्राय समझना चाहिये; क्योंकि यथायोग्य निमित्त होता ही है।

यहाँ कोई तर्क करता है कि समयसार में कहा है ''लिंग मुक्ति का कारण नहीं है, आत्मस्वरूप के अवलंबन से ही मोक्ष होता है।'' फिर बाह्यलिंग से क्या प्रयोजन? सवस्त्र हो या निर्वस्त्र (नग्न)। निर्वस्त्र लिंग ही होना चाहिये, ऐसा आग्रह क्यों?

तथा समाधिशतक में भी कहा है कि जिसे लिंग का आग्रह है, उसने शास्त्र के मर्म को नहीं जाना।

अज्ञानी जीव निमित्त-नैमित्तिक संबंध को नहीं समझते हैं और कुतर्क करते हैं। आत्मा के आश्रय से ही मोक्ष होता है, यह बात बराबर है, फिर भी मोक्षदशा नग्न-दिगंबर भावलिंगी मुनिदशा के बिना नहीं होती है।

इस कथन से बाह्यलिंगरूप मुनिदशा को ही मोक्ष का कारण माने तो भूल है। और वह दशा मोक्ष का कारण नहीं है—ऐसा मानकर सवस्त्र मुनिदशा से भी मोक्ष हो सकता है, नग्न मुनिदशा से क्या लाभ? इसप्रकार स्वीकार करे तो भी भूल है।

जैसे केसर लेते समय डिब्बी वा वर्नी की सुंदरता नहीं देखी जाती, क्योंकि डिब्बी और वर्नी केसर नहीं है और न ही उन्हें दूध व पाक में घोलकर काम में लाया जा सकता है। तथा केसर लेते समय डिब्बी, वर्नी आदि न हो—ऐसा भी नहीं है, कुछ न कुछ होता ही है, जिसमें वह रखी रहती है। वैसे ही निजचैतन्यस्वरूप के भावपूर्वक मोक्षदशा प्रकट करते समय नग्नमुनिदशा का महत्त्व नहीं है, क्योंकि उससे मोक्ष नहीं होता है; मोक्ष तो स्वभाव के अवलंबन से ही होता है। मुनिदशा स्वयं मोक्ष भी नहीं है। परंतु मोक्षदशा जिससमय प्रकट होती है, उस समय नग्न-दिगंबर मुनिदशा होती ही है, महाव्रतों के पालन करने का विकल्प आये बिना नहीं रहता है, किंतु वह विकल्प मुक्ति का कारण नहीं है। [क्रमशः]

ज्ञान-गोष्ठी

सायंकालीन तत्त्वचर्चा के समय विभिन्न मुमुक्षुओं द्वारा पूज्य स्वामीजी से किये गये प्रश्न और स्वामीजी द्वारा दिये गये उत्तर।

प्रश्न– आत्मानुभव करने के लिये प्रथम क्या करना ?

उत्तर– प्रथन यह निश्चित करना कि मैं शरीरादि परद्रव्यों का कुछ कर सकता नहीं, और विकार होता है वह कर्म से नहीं, किंतु मेरे अपने ही अपराध से होता है; ऐसा निश्चय करने के बाद विकार मेरा स्वरूप नहीं, मैं तो शुद्ध चैतन्यमूर्ति ज्ञायक हूँ—ऐसा निर्णय करके ज्ञानानंदस्वरूप आत्मा के सन्मुख होने का अंतर-प्रयत्न करना।

प्रश्न– पहले व्रतादि का अभ्यास तो करना चाहिये न ?

उत्तर– प्रथम में प्रथम राग से भिन्न पड़ने का अभ्यास करना चाहिये। राग से भेदज्ञान के अभ्यास बिना व्रतादि का अभ्यास करना तो सचमुच मिथ्यात्व का अभ्यास करना ही है।

प्रश्न– पर्याय उस समय की सत् है, निश्चित है, ध्रुव है—ऐसा कहने का प्रयोजन क्या है ?

उत्तर– पर्याय के ऊपर से लक्ष्य छोड़कर ध्रुवद्रव्य की तरफ ढलने का प्रयोजन है। पर्याय उस समय की सत् है, निश्चित है, ध्रुव है—ऐसा बताकर, उसके ऊपर का लक्ष्य छुड़ाकर ध्रुवद्रव्य की ओर लक्ष्य कराने का प्रयोजन है। पर्याय निश्चित है, ध्रुव है, अर्थात् पर्याय उससमय की सत् होने से आगे-पीछे हो सके—ऐसा नहीं है, इसप्रकार जाने तो दृष्टि द्रव्य के ऊपर जावे और द्रव्य के ऊपर लक्ष्य जाने से वीतरागता उत्पन्न हो। वीतरागता ही मूल तात्पर्य है। अरे! ऐसी बात करोड़ों रुपया अर्पण करने पर भी मिलनेवाली नहीं है। अहा! जिसके जानने पर वीतरागता उत्पन्न हो, भला उसकी कीमत क्या ? वह तो अनमोल है।

प्रश्न– समयसार संवराधिकार की प्रारंभिक गाथा १८१ की टीका में कहा है कि 'वास्तव में एक वस्तु दूसरी वस्तु की नहीं है। वहाँ यह भी कथन है कि जीव और राग के प्रदेश भिन्न-भिन्न हैं। कृपया स्पष्ट कीजिए ?

उत्तर– वास्तव में एक वस्तु दूसरी वस्तु की नहीं है, इसलिये दोनों के प्रदेश भिन्न हैं। आत्मवस्तु से शरीरादि परद्रव्य तो भिन्न हैं ही, किंतु यहाँ तो मिथ्यात्व-राग-द्वेष के जो परिणाम हैं, वे निर्मलानंद प्रभु—ऐसे आत्मा से भिन्नस्वरूप हैं। अतः पुण्य-पापभाव आत्मा से भाव से भिन्न हैं और भाव से भिन्न हैं और भाव से भिन्न होने के कारण उनके प्रदेश भी भिन्न हैं। असंख्यप्रदेशी आत्मा है, उससे आस्रव के प्रदेश भिन्न हैं। यह हैं तो जीव के असंख्य प्रदेश में ही, परंतु निर्मलानंद प्रभु असंख्यप्रदेशी ध्रुव है, उससे आस्रवभाव के प्रदेश भिन्न हैं। आत्मा और आस्रव की भाव से भिन्नता है, इसलिये उनके प्रदेश को भिन्न कहा और आत्मा के आश्रय से प्रकट हुई निर्मल पर्याय भी आस्रववस्तु से भिन्न कही गयी है। भाव से भिन्न होने के कारण उनके प्रदेश को भी भिन्न कहकर वस्तु ही भिन्न है, ऐसा कथन आचार्य ने किया है।

प्रश्न– जीवद्रव्य अन्य द्रव्यों द्वारा उपकृत होता है—ऐसा शास्त्रों में कथन आता है। कृपया अभिप्राय खुलासा कीजिये ?

उत्तर– शास्त्रोल्लेख में व्यवहार के कथन में ऐसा आता है कि इस जीव का अन्य द्रव्य उपकार करते हैं। इसका अभिप्राय ऐसा है कि एक द्रव्य के कार्यकाल में दूसरे द्रव्य की पर्याय निमित्तमात्र-उपस्थितिमात्र धर्मास्तिकायवत् है—ऐसा ही इष्टोपदेश ग्रंथ में कहा है तथा समयसार गाथा द्वितीय में भी कहा है कि प्रत्येक द्रव्य अपने ही गुण-पर्यायों को स्पर्श करता है, किंतु दूसरे किसी भी द्रव्य को स्पर्श नहीं करता, चुम्बन नहीं करता। एक द्रव्य की पर्याय में दूसरे द्रव्य की पर्याय का तो अत्यंत अभाव है, ऐसी वस्तुस्थिति में भला एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का क्या करे ? कुछ भी नहीं।

प्रश्न– सम्यग्दर्शन प्रकट करने के लिये पात्रता कैसी होनी चाहिये ?

उत्तर– पर्याय सीधी द्रव्य को पकड़े, वह सम्यग्दर्शन की पात्रता है। तदतिरिक्त व्यवहार पात्रता तो अनेक प्रकार की कही जाती है। मूल पात्रता तो दृष्टि द्रव्य को पकड़कर स्वानुभव करे वही है।

प्रश्न– राग आत्मा का है या पुद्गलकर्म का ? दोनों प्रकार से कथन शास्त्र में आता है। कृपया रहस्य बतलाइए ?

उत्तर– वस्तु की सिद्धि करनी हो तब राग व्याप्त है और आत्मा व्यापक है, अर्थात् राग आत्मा

का है—ऐसा कहा जाता है। जब दृष्टि शुद्धचैतन्य की हुई, सम्यग्दर्शन हुआ, तब निर्मल पर्याय व्याप्य और आत्मा व्यापक है। सम्यग्दृष्टि का जो राग है वह व्याप्य और कर्म उसका व्यापक है, अर्थात् सम्यग्दृष्टि का जो राग है, वह पुद्गलकर्म का कहा जाता है, क्योंकि ज्ञानी जीव दृष्टि अपेक्षा से राग से भिन्न पड़ गया है, इसलिये उसके राग में कर्म व्यापता है—ऐसा कहा जाता है।

प्रश्न– नियमसारजी शास्त्र में ऐसा कहा कि आत्मा निरंतर सुलभ है। इसका क्या अर्थ है ?

उत्तर– नियमसारजी कलश १७६ में कहा है कि आत्मा निरंतर सुलभ है। आहाहा! आत्मा निरंतर वर्तमान सुलभ है। वर्तमान सुलभ है—उसका तात्पर्य यह है कि आत्मा वर्तमान में ही है, उसका वर्तमान में आश्रय ले! भूतकाल में था और भविष्य में रहेगा—ऐसा त्रिकाल लेने पर उसमें काल की अपेक्षा आती है। इसलिये वर्तमान में ही त्रिकाली पूर्णानंदनाथ पड़ा है, उसका वर्तमान में ही आश्रय लेना योग्य है–ऐसा कहते हैं।

प्रश्न– नियमसार में संवर–निर्जरा–मोक्षतत्त्व को भी साररूप नहीं कहा। वह किस अपेक्षा से ?

उत्तर– आत्मा ही एक सर्व तत्त्वों में साररूप है। संवर, निर्जरा और मोक्ष उत्पन्न करने की अपेक्षा से, प्रकट करने की अपेक्षा से, तो हितरूप और साररूप कहे जाते हैं, किंतु नियमसारजी में उन्हें भी साररूप नहीं कहा। इसका कारण यह है कि वे पर्याय हैं, नाशवान हैं, क्षणिक हैं, और आत्मा तो अविनाशी ध्रुव होने से साररूप है। संवरादि तत्त्व तो नाशवान भाव हैं, उनसे अविनाशी भगवान आत्मा दूर है। सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र–वीर्यादिभाव पर्याय हैं—विनाशीक हैं, अतः साररूप नहीं हैं। अविनाशी भगवान आत्मा ही एक साररूप होने से नाशवान भाव हैं, उनसे अविनाशी भगवान आत्मा दूर है। सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र–वीर्यादिभाव पर्याय हैं–विनाशीक हैं, अतः साररूप नहीं हैं। अविनाशी भगवान आत्मा ही एक साररूप होने से नाशवान भावों से दूर है। आहाहा! पर्याय के समीप ध्रुव भगवान पड़ा है—वही अकेला साररूप होने से दृष्टि में लेने योग्य है और तो सर्व असार है।

प्रश्न– द्रव्य और गुण में तथा एक गुण का दूसरे गुण में भी क्या कोई अभाव है ? यदि है तो कौन सा ? और उसके समझने में क्या लाभ है ?

उत्तर– द्रव्य है, वह गुण नहीं और गुण है वह द्रव्य नहीं। गुण और द्रव्य के बीच में तथा एक गुण और दूसरे गुण के बीच में अतद्भाव है। अपने द्रव्य में भी गुण में और द्रव्य में अतद्भाव है। आहाहा! यहाँ तक गंभीरता को स्पर्श किया है तो फिर दूसरे बाहर के पदार्थ कि जिनके प्रदेश भी पृथक् ही हैं, वे तो सर्वथा भिन्न हैं ही–ऐसी दशा में एक पदार्थ दूसरे पदार्थ का क्या कर सकता है? प्रभु! तू तो अकेला ही है। अकेले में भी सत्ता को और द्रव्य को तद्अभाव है। ज्ञान है वह आत्मा नहीं, आनंद है, वह आत्मा नहीं, और आत्मा है आनंद नहीं, ज्ञान नहीं, इसप्रकार दो के बीच तद्अभाव है। प्रवचनसारजी में द्रव्य की स्वतंत्रता के अनेक बोल आये हैं। जिसप्रकार सत्य है–उसीप्रकार ज्ञान में आवे तभी पर्याय अंदर झुक सकती है, अन्यथा पर्याय अंदर में नहीं झुक सकती और अंदर त्रिकालीस्वभाव पर लक्ष गये बिना आनंदानुभूति नहीं हो सकती।

प्रश्न– द्रव्य को गुण स्पर्श नहीं करता और गुण को द्रव्य स्पर्श नहीं करता—ऐसा कहने का प्रयोजन क्या है?

उत्तर– गुणभेद की दृष्टि छुड़ाकर अभेद वस्तु की दृष्टि कराना ही इस कथन का प्रयोजन है।

प्रश्न– भरतजी ने बाहुबलीजी के ऊपर क्रोध से चक्र छोड़ा तब भी क्या उनके अंदर उत्तम क्षमा थी?

उत्तर– हाँ, भरतजी ने यद्यपि क्रोधावेश में बाहुबलीजी के ऊपर चक्रप्रहार किया था तथापि उससमय भी भरतजी के अंदर उत्तमक्षमा विद्यमान थी, क्योंकि उनके अंदर अनंतानुबंध को करनेवाले मिथ्यात्व का अभाव था। इसके विपरीत बाह्य से द्रव्यलिंगधारी मुनि हो और कोई वैरी आदि आकर शरीर के खंड-खंड करे तथापि बाह्य से क्रोध न करे, तो भी उसके अंदर में अनंतानुबंध को करनेवाले मिथ्यात्व का सद्भाव होने से बाह्य में क्षमा धारण करते हुए भी उत्तमक्षमा नहीं कही जा सकती।

प्रश्न– आत्मानुभव होने से प्रथम ही शुभराग का हेय मानना उचित हे क्या?

उत्तर– आत्मा का अनुभव होने से पहले भी मुझे शुभराग हेय है—ऐसा निर्णय करना चाहिये। सम्यक्त्व होने से पहले भी श्रद्धान में शुभराग का निषेध आना चाहिये। शुभराग छूटता तो स्वरूप में स्थिरता होने पर ही है, परंतु उसका निषेध तो प्रथम से ही आना चाहिये।

यदि शुभराग का आदर किया जायेगा तो मिथ्यात्व दृढ़ होगा। शुभराग को हेय जानने का प्रयोजन कहीं अशुभ में चले जाने का नहीं है।

प्रश्न– सम्यग्दर्शन के बिना क्या व्रत-तप-दान-शीलादि अफल हैं-व्यर्थ हैं ?

उत्तर– हाँ, सम्यग्दर्शन के बिना किये जानेवाले समस्त व्रतादि-दानादि मुक्ति के लिये निष्फल हैं, संसारवृद्धि के लिये सफल हैं।

प्रश्न– मोक्ष की पर्याय यत्नपूर्वक करें तब होगी या होनी होगी तब होगी ?

उत्तर– ज्ञानी की दृष्टि द्रव्य के ऊपर पड़ी है, द्रव्य में भाव नाम का गुण है, इसी गुण के कारण निर्मल पर्याय होती ही है; उसको करें तब हो—ऐसा नहीं है। दृष्टि द्रव्य के ऊपर पड़ने से निर्मलता होती ही है।

प्रश्न– राजा-महाराजा सरीखे के एक ही रानी और धर्मी सम्यग्दृष्टि के ९६ हजार रानियाँ ? फिर भी उसको बंधन नहीं ?

उत्तर– भाई ! बाहर के पदार्थ बहुत हों तो अधिक बंध के कारण और अल्प हों तो अल्प बंध के कारण—ऐसा है नहीं। किसी का अधिक परमाणुओं से निर्मित स्थूल शरीर हो तो बंधन विशेष और कृश शरीर हो बंधन अल्प होता हो—ऐसा नहीं है। परद्रव्यों की अधिकता और अल्पता होना कहीं बंध और अबंध का कारण नहीं है। बंध का कारण तो परद्रव्यों में एकत्वबुद्धि-स्वामित्वबुद्धि का होना ही है, संयोगों की अल्प-बहुत्वता बंध का कारण नहीं है। सम्यग्दृष्टि के ९६ हजार रानियाँ, नवनिधान, चौदह रत्नादि वैभव होने पर भी वह चक्रवर्ती राजा धर्मी होने के कारण उन सबको अपना नहीं मानता, अतः वे परद्रव्य उसको बंध का कारण नहीं होते। इसके विपरीत एक रानीवाला राजा हो अथवा रानियों का त्यागी द्रव्यलिंगी मुनि हो, तथापि परद्रव्यों में स्वामित्व स्थापित करनेवाला सदैव मिथ्यात्वरूपी महापाप का बंधक होता ही है। अंदर में राग में एकत्वबुद्धि पड़ी है, वही बंध का कारण है, संयोगों का अल्पाधिक आगमन तो उनके अपने कारण से है—आत्मा उनका कर्ता है नहीं। पूर्व पुण्य के कारण अनुकूल बहुत संयोगों की प्राप्ति होना बंध का कारण नहीं है। परद्रव्यों का संयोग विशेष होने पर भी उनसे बंध होता नहीं है, ऐसा कहकर परद्रव्यों से बंध होने की शंका

छुड़ाई है; कहीं स्वच्छंदी होने के लिये ऐसा कथननहीं किया गया है—यह विशेष ध्यान रखने की बात है। स्वच्छंदता का पोषण तो जिनागम में कहीं है ही नहीं। यहाँ तो दृष्टि के विषय की विशेषता बतलाई है। अधिक संयोग हो तो हानि और संयोग छूट जायें तो धर्मलाभ हो जाये-ऐसा है ही नहीं।

नैरोबी में पंचकल्याणक महोत्सव

नैरोबी पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव लगभग चार-पाँच माह से जैन समाचार-पत्रों का बहुचर्चित विषय रहा है। 'नई दुनियाँ प्रकरण' भी इसका एक हेतु रहा है। इसके विस्तृत समाचार विगत अंकों में दिये ही जा चुके हैं। किंतु उनमें उन लोगों का उल्लेख नहीं हो पाया था जिनके अथक् प्रयासों एवं आर्थिक ही नहीं, अपितु सर्व प्रकार के सहयोग से यह कार्य संपन्न हुआ था। प्रतिष्ठा महोत्सव में जिन महानुभावों ने बोलियाँ ली थीं, उनकी जानकारी इसप्रकार है:—

श्री जेठाभाई हंसराजभाई के परिवार की ओर से ६.५ लाख, श्री लक्ष्मीचंदभाई के परिवार की ओर से ६ लाख, श्री करमणभाई नरसिंहभाई के परिवार की ओर से ४ लाख, श्री रायचंदभाई की ओर से ३,५५,०००, श्री भारमलभाई वाधजीभाई (हरिया ब्रदर्स) के परिवार की ओर से ३ लाख, श्री किशोरभाई अजितभाई के परिवार की ओर से २.७५ लाख, श्री हरकुभाई मेघजीभाई के परिवार की ओर से २ लाख, श्री जवरचंद पूनमचंद की ओर से १.५ लाख, श्री शांतिभाई की ओर से १.५ लाख, श्री पूंजाभाई परबतभाई की ओर १.५ लाख, संतोषबहिन के परिवार की ओर से १.२५ लाख, श्री बेलजी नरसिंह के परिवार की ओर से १ लाख, श्री शशिकांत देवसीभाई मालदे के परिवार की ओर से ७५ हजार, श्री मेघजी कर्मसिंह भाई की ओर से ५० हजार, श्री देवराज जीवराज शाह के परिवार की ओर से ५५ हजार, श्री शांतिलाल देवजीभाई की ओर से ४५ हजार, श्री लालजी नत्थू के परिवार की ओर से ३० हजार, श्रीमती लीलावती नरसिंह परिवार की ओर से २५ हजार, श्री रामजीभाई देवराजशाह के परिवार की ओर से २१ हजार, श्री देवशीभाई मेघजी की ओर से ३५ हजार, श्री मूलजी धर्मसिंहजी की ओर से ३० हजार, श्री केशवलाल हेमराज की ओर से २१ हजार, श्री केशवलालभाई वीरयां शाह के परिवार की ओर से २१ हजार, श्री बेलजीभाई मगनभाई शाह की ओर से २१ हजार, श्री देवसीभाई के परिवार की ओर से २१ हजार तथा श्री झूठालाल प्रेमचंद, श्री करमसिंहभाई जयसिंह, श्री मोहनलाल लदुभाई, श्री भगवान कचरा. श्री बेलजी पेथराज, डॉ० नवीनचंद, श्री कस्तूरबेन खीमजी, श्री जवरचंद लदुभाई, श्री मणीबेन, श्री धर्मसिंह देवराज जयसिंह पेमाभाई देवजी नत्थु इत्यादि भाई-बहिनों ने भी १०-१५ हजार की बोलियाँ ली हैं।

बीस वर्ष पहले

[इस स्तंभ में आज से बीस वर्ष पहले आत्मधर्म (हिंदी) मे प्रकाशित महत्त्वपूर्ण अंशों को प्रकाशित किया जाता है।]

हेतु की विपरीतता

चैतन्यस्वभाव की साधना करते-करते साधक को बीच में कुछ राग शेष रह जाता है; किंतु उसका हेतु राग में वर्तने का नहीं होता। उसका हेतु (अभिप्राय) तो वीतरागरूप से चैतन्यस्वभाव में ही वर्तने का है। इसलिये राग होने पर भी उसका हेतु विपरीत नहीं है; उसका हेतु—उसका ध्येय तो सम्यक् ही है।

अज्ञानी को चैतन्यस्वभाव का भान नहीं है और बाह्य विकल्पों में ही अटका रहता है, इसलिये उसके हेतु में ही राग है। राग के हेतु से वह राग में वर्तता है। राग ही उसका ध्येय है, राग से ही वह लाभ मानता है। उससे किंचित् हटकर चिदानंदस्वभाव में नहीं आता, इसलिये उसका तो हेतु ही मिथ्या है, उसके हेतु में ही विपरीतता है।

राग तो ज्ञानी और अज्ञानी दोनों को होता है; किंतु अज्ञानी को राग रखने का हेतु है और ज्ञानी का हेतु उस राग को दूर करके स्वभाव में स्थिर होने का है।

इसप्रकार दोनों के हेतु में महान अंतर है।

—आत्मधर्म, वर्ष १५, अंक १७९, मार्च १९६०, कवर पृष्ठ १

समाचार दर्शन

महावीर जयंती सानंद संपन्न

नई दिल्ली :- दरियागंज स्थित जैन बालाश्रम में दिनांक ४-४-८० को महावीर जयंती उत्साहपूर्वक मनायी गयी। इस अवसर पर न्यायाधीश श्री जे० डी० जैन की अध्यक्षता तथा न्यायाधीश श्री मांगीलालजी जैन के मुख्य आतिथ्य में एक सभा का आयोजन किया गया। सभा में डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल का 'भगवान महावीर और उनकी अहिंसा' पर प्रभावपूर्ण व्याख्यान हुआ जिसे हजारों श्रोताओं ने मंत्रमुग्ध होकर सुना। अन्य वक्ताओं में श्री प्रेमचंदजी जैन (जैना वाच कं०) तथा सुप्रसिद्ध साहित्यकार श्री यशपालजी जैन मुख्य थे। इस प्रसंग पर विभिन्न रोचक कार्यक्रम भी प्रस्तुत किये गये।

मॉडल बस्ती स्थित दि० जैन मंदिर में भी डॉ० भारिल्लजी का समयसार ग्रंथ पर हृदयग्राही तात्त्विक प्रवचन हुआ। —सुरेंद्रकुमार जैन

अलवर (राज०) :- स्थानीय महावीर जयंती महोत्सव समिति के आमंत्रण पर जयपुर से जैनपथ प्रदर्शक के संपादक पंडित रतनचंदजी भारिल्ल एवं टोडरमल सिद्धांत महाविद्यालय के छात्र पंडित प्रेमचंदजी यहाँ पधारे। श्री भारिल्लजी का 'भगवान महावीर और उनकी अहिंसा' विषय पर मार्मिक प्रवचन हुआ। इस अवसर पर स्थानीय वीतराग-विज्ञान पाठशाला के छात्रों को पुरस्कार वितरित किये गये। ६००) रुपये का सत्साहित्य बिका। —हजारीलाल जैन

इटावा (उ०प्र०) :- दिनांक २९-३-८० से ३१-३-८० तक जयपुर से पधारे टोडरमल सिद्धांत महाविद्यालय के छात्र ब्रह्मचारी अभिनंदनकुमारजी शास्त्री के दोनों समय प्रवचन आयोजित किये गये। विश्व हिंदू परिषद् के संयोजकत्व में महावीर जयंती का आयोजन किया गया। समारोह में आपका भगवान महावीर के सिद्धांतों पर प्रभावी व्याख्यान हुआ। लगभग ५००) रुपये के साहित्य की बिक्री हुई।

जयपुर (राज०) :- महावीर जयंती के अवसर पर अनेक स्थानों पर प्रभात फेरियाँ निकाली गयीं। राजस्थान जैन सभा द्वारा विशेष सभा का आयोजन किया गया जिसमें वित्त राज्यमंत्री श्री जगन्नाथजी पहाड़िया एवं न्यायाधीश श्री नरेंद्रमोहनजी कासलीवाल ने अपने व्याख्यानों में भगवान महावीर के सिद्धांतों की सार्थकता बताते हुए उन्हें जीवन में उतारने की

प्रेरणा दी। इस अवसर पर विभिन्न सांस्कृतिक कार्यक्रम भी आयोजित किये गये।

सहारनपुर (उ०प्र०) :- महावीर जयंती के प्रसंग पर अ० भा० जैन युवा फैडरेशन की अधीनस्थ शाखा 'जैन युवा परिषद्' ने 'अहिंसा एवं शाकाहार' सम्मेलन का आयोजन किया। इस अवसर पर हिन्दू, मुस्लिम, सिख तथा ईसाई धर्म के वक्ताओं के अतिरिक्त जैनदर्शन की ओर से जयपुर से पधारे उदीयमान विद्वान पंडित अभयकुमारजी शास्त्री एवं पंडित राकेशकुमारजी के भाषण हुए। रात्रि में विभिन्न शिक्षण संस्थाओं की ओर से 'अपरिग्रहवाद' पर भाषण-प्रतियोगिता आयोजित की गयी जिसमें प्रमुख वक्ता भी पंडित अभयकुमारजी थे। २९ एवं ३० मार्च को समीपस्थ मंदिरों में भी आपके तात्त्विक प्रवचनों का आयोजन किया गया, जिससे समाज लाभान्वित हुई। ३१ मार्च को नई मंडी में नवीन जैन मंदिर का शिलान्यास हुआ। समारोह में आपका जिनेन्द्रदर्शन की आवश्यकता पर प्रभावशाली व्याख्यान हुआ।

फिरोजाबाद (उ०प्र०) :- दिनांक २८-३-८० से ३१-३-८० तक महावीर जयंती विभिन्न समारोहों के साथ सानंद मनायी गयी। तीनों समय पंडित नेमीचंदजी पाटनी आगरा तथा पंडित जतीशचंदजी शास्त्री जयपुर के प्रवचन स्थानीय चंद्रप्रभ दि० जैन मंदिर एवं पी० डी० जैन इंटर कॉलेज में हुए। पंडित महावीरकुमार पाटिल ने बच्चों की कक्षाऐं लीं। इस अवसर पर विविध सांस्कृतिक कार्यक्रम आयोजित किये गये। प्रवचनों का लाभ लेने के लिये इटावा, गोरमी, भिंड, जसवंतनगर, सिरसागंज तथा शिकोहाबाद आदि स्थानों से अनेक मुमुक्षु भाई-बहन पधारे थे। आत्मधर्म के अनेक ग्राहक बने तथा लगभग ५००) रुपये का साहित्य बिका। **— सूरजभान जैन**

सिरसागंज (उ०प्र०) :- स्थानीय समाज के विशेष आग्रह पर फिरोजाबाद से लौटने पर पंडित जतीशचंदजी पधारे। यहाँ दो समय आपके मार्मिक प्रवचन हुए तथा आत्मधर्म के अनेक ग्राहक बनाए गए। समाज ने आपसे पुनः पधारने का अनुरोध किया। **—भीकमचंद जैन**

शिकोहाबाद (उ०प्र०) :- पंडित जतीशचंदजी शास्त्री का 'भगवान महवीर और उनकी अहिंसा' विषय पर प्रभावी प्रवचन हुआ। समाज ने आपके प्रवचन की मुक्तकंठ में प्रशंसा की। **— शांतिशरण वैद्य**

सनावद (म०प्र०) :- महावीर जयंती के अवसर पर प्रभातफेरी एवं रथयात्रा का

आयोजन किया गया। अ० भा० जैन युवा फैडरेशन की स्थानीय शाखा की ओर से लगभग ३०० गरीबों को भोजन कराया गया। रात्रि को सार्वजनिक सभा हुई जिसमें अनेक वक्ताओं ने अपने विचार व्यक्त किये।

जवेरा (म०प्र०) :- अ० भा० जैन युवा फैडरेशन के तत्त्वावधान में महावीर जयंती विभिन्न आकर्षक कार्यक्रमों के साथ सानंद संपन्न हुई। अनेक वक्ताओं ने भगवान महावीर के व्यक्तित्व एवं उनके द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों पर विस्तृत प्रकाश डाला। दिनांक २४-३-८० से २९-३-८० तक पंडित कैलाशचंदजी बुलंदशहर वालों की कक्षाओं का आयोजन भी किया गया।

— उदय जैन

उदयपुर (राज०) :- महावीर जयंती के अवसर पर दिनांक २८-३-८० से ३१-३-८० तक तीनों समय पंडित राजकुमारजी शास्त्री जयपुर के प्रवचन आयोजित किये गये। महावीर जयंती समारोह में आपका सारगर्भित व्याख्यान हुआ। कृषि महाविद्यालय में महावीर विद्यार्थी संगठन के शपथग्रहण समारोह में 'अहिंसा' का आपने अच्छा विवेचन किया। स्थानीय उदासीन आश्रम के अतिरिक्त निकटवर्ती ग्राम लकड़वास में भी आपके दो प्रवचन आयोजित किये गये। लगभग २००) रुपये का साहित्य बिका।

पंडित ज्ञानचंदजी द्वारा गुजरात में धर्मप्रभावना

पंडित ज्ञानचंदजी विदिशा द्वारा दिनांक ६-३-८० से ६-४-८० तक गुजरात राज्य के हिम्मतनगर, नवा, गडोडा, जांबुडी, वामनवाड़, लिंबाई, रणासन, फतेपुर मोटा, सोणासन, जिंजवा, सलाल, बीसनगर, मेहसाना, कलोल, मुनई, मुडैटी, गोरल, चोरीवाल, बड़ौली, सांवली तथा कोटरा आदि २१ स्थानों पर धर्मप्रभावना हुई। प्रतिदिन सामूहिक पूजन तथा भक्ति के साथ-साथ समयसार, छहढाला तथा मोक्षमार्गप्रकाशक पर तीनों समय सभी स्थानों पर आपके तात्त्विक प्रवचन चलते थे। श्री कुंदकुंद कहान दिगंबर जैन तीर्थसुरक्षा ट्रस्ट एवं कुंदकुंद कहान दि० जैन सर्वोदय ट्रस्ट को एक लाख से भी अधिक की नगद राशि प्राप्त हुई तथा लगभग 5 हजार रुपये के नये वचन प्राप्त हुए। आपके साथ श्री मीठालाल हिम्मतनगर, पंडित चंदूभाई एवं पंडित नाथालाल फतेपुर तथा ब्रह्मचारी संतोषकुमारजी सोनगढ़ भी थे। अनेक स्थानों पर युवा फैडरेशन के सदस्यों ने भक्ति एवं प्रवचनों के कार्यक्रमों में बहुत उत्साह दिखाया।

— माणिकलाल आर० गाँधी

जैन युवा फैडरेशन, कोटा का वार्षिक अधिवेशन

कोटा (राज०) :- १६ मार्च, ८० को अ० भा० जैन युवा फैडरेशन की स्थानीय शाखा का प्रथम वार्षिक अधिवेशन विविध कार्यक्रमों के साथ सानंद संपन्न हुआ। प्रातः ८ से ९ तक डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल का प्रभावी प्रवचन हुआ-जिसे उपस्थित जनसमुदाय ने मंत्रमुगध होकर सुना। ९.३० बजे फैडरेशन द्वारा संचालित जैन पापड़ उद्योग का उद्घाटन श्री सुकुमारचंदजी जैन मेरठ ने किया तथा अध्यक्षता राजस्थान के भू० पू० स्वास्थ्यमंत्री श्री त्रिलोकचंदजी जैन ने की। अपराह्न २ बजे सामूहिक भोज के पश्चात् बाहर से पधारे फैडरेशन की विभिन्न शाखाओं के प्रतिनिधियों की बैठक हुई जिसकी अध्यक्षता फैडरेशन के अध्यक्ष पंडित जतीशचंदजी शास्त्री ने की तथा सभा का संचालन महामंत्री श्री अखिल बंसल ने किया। रात्रि ७.३० बजे अधिवेशन प्रारंभ हुआ जो रात्रि ११ बजे तक चला। फैडरेशन की कोटा शाखा के संरक्षक श्री रिखबचंदजी एडवोकेट ने समागत अतिथियों का स्वागत किया तथा पंडित अभयकुमारजी शास्त्री ने फैडरेशन की गतिविधियों का संक्षिप्त परिचय दिया। कोटा शाखा द्वारा प्रकाशित स्मारिका का विमोचन डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल ने किया तथा श्री युगलजी की कृति 'भरत-बाहुबली' का विमोचन डॉ० देवेंद्रकुमारजी शास्त्री, नीमच ने किया। समारोह के मुख्य अतिथि श्री त्रिलोकचंदजी जैन थे तथा अधिवेशन की अध्यक्षता श्री लक्ष्मीचंदजी जैन भारतीय ज्ञानपीठ ने की। डॉ० भारिल्लजी, डॉ० देवेंद्रकुमारजी, श्री सुकुमारचंदजी, श्री युगलजी तथा श्री पानाचंदजी एडवोकेट ने अपने विचार व्यक्त किये। सभा का संचालन कोटा शाखा के मंत्री श्री राजेशजी सोगानी ने किया।

मल्हारगढ़ (म०प्र०) :- तीर्थक्षेत्र निसईजी पर २३-२-८० से २७-२-८० तक श्री जिनवाणी स्थापना तिलक प्रतिष्ठा मेला एवं हीरक जयंती महोत्सव विभिन्न आयोजनों के साथ सानंद संपन्न हुए।

— विजय तारण

करहल (उ०प्र०) :- नवनिर्मित 'श्री वीतराग-विज्ञान स्वाध्याय मंडप' का उद्घाटन प्रतिष्ठाचार्य पंडित धन्नालालजी ग्वालियर द्वारा १५ से १८ मार्च ८० तक मंगलमय पंचपरमेष्ठी पूजन-विधान तथा द्वादशांग जिनवाणी पूजन-विधान सहित बड़े ही उत्साहपूर्वक संपन्न हुआ। प्रतिदिन चारों समय आपके तात्त्विक प्रवचनों से समाज ने लाभ उठाया।

— वीरेंद्रकुमार जैन 'कुमुद'

कोलारस (म०प्र०) :- ९ से ११ फरवरी ८० तक अ० भा० जैन युवा फैडरेशन की स्थानीय शाखा के तत्त्वावधान में शिक्षण शिविर का आयोजन किया गया। विभिन्न विषयों पर आयोजित कक्षाओं एवं प्रवचनों से समाज लाभान्वित हुई। **—संयोजक**

खनियाधाना (म०प्र०) :- बड़ौदा पंचकल्याणक से लौटते हुए ब्रह्मचारी अभिनंदनकुमारजी २ व ३ मार्च को यहाँ रुके। यहाँ आपके मोक्षमार्गप्रकाशक के सम्यक्त्व के सन्मुख मिथ्यादृष्टि के प्रकरण पर तीन मार्मिक प्रवचन हुए। **— ताराचंद पटवारी**

जयपुर :- श्री दि० जैन मंदिर सीवाड में श्रीमती तीजाँ बाई (धर्मपत्नी स्व० श्री माणकचंदजी मालावत) द्वारा अष्टाह्निका पर्व में श्री नंदीश्वर मंडल विधान का आयोजन किया गया, नंदीश्वर द्वीप की रचना अत्यंत आकर्षक थी। दि० ४ मार्च को समाज की ओर से एक भव्य रथयात्रा भी निकाली गयी। पूरे ११ दिन तक स्थानीय पंडित ज्ञानचंदजी बिल्टीवालों के बृहद्द्रव्यसंग्रह पर प्रभावशाली प्रवचन हुये। श्री संजय बंसल द्वारा सत्साहित्य की बुकस्टाल भी लगाई गई। **— सुरेन्द्रकुमार गोधा**

जैन विद्यार्थीगृह, सोनगढ़ में अपने बच्चों को प्रवेश दिलाइये

विगत २७ वर्षों से संचालित इस छात्रावास में अध्ययन हेतु कक्षा ५ से १२ तक आर्ट्स, साइन्स और कॉमर्स विषयों के लिये जैन छात्रों को प्रवेश दिया जाता है। यहाँ लौकिक शिक्षा के साथ-साथ धार्मिक शिक्षण भी दिया जाता है तथा पूज्य कानजीस्वामी के सान्निध्य का लाभ भी मिलता है। निवास व भोजन की अच्छी व्यवस्था है। यद्यपि प्रत्येक छात्र पर लगभग १२०) रुपये मासिक खर्च आता है तथापि पूरी फीस के रूप में ६०) रुपये तथा आधी फीस वालों से ३५) रुपये मासिक ही लिया जाता है। जो छात्र प्रवेश चाहते हों वे १) रुपये के डाक टिकिट भेजकर प्रवेशपत्र एवं नियमावली ५-५-८० तक मंगवालें तथा उसे भरकर वार्षिक परीक्षा की अंकसूची के साथ २०-५-८० से पूर्व भेज दें।

—मंत्री, जैन विद्यार्थीगृह, सोनगढ़, जिला-भावनगर (गुजरात)

गाँव-गाँव में वीतराग-विज्ञान पाठशालाएँ खोलिये।

आवश्यक सूचनाएँ :-

(१) हिंदी 'क्रमबद्धपर्याय' की पुस्तक १० अप्रेल तक जितने भी आर्डर प्राप्त हुए थे, उनमें से दो-चार बड़े आर्डरों को छोड़कर सभी को भेजी जा चुकी है।

बड़े आर्डरों की पूरी पुस्तकें इसलिए नहीं भेजी जा सकीं कि पुस्तकें तो सिर्फ दस हजार छपी थीं और आर्डर आ गये ग्यारह हजार के। अत: बड़े आर्डर वालों में से दो हजार पुस्तकें रोक ली हैं। उन्हें शेष पुस्तकें अगला संस्करण छपने पर ही मिल सकेंगी। बारह हजार का अगला संस्करण छपना चालू हो गया है, आशा है मई तक छप जावेगा, तब तक धैर्य रखें। फुटकर बिक्री के लिये एक हजार पुस्तकें रखी हैं। अत: आर्डर देते समय कम से कम पुस्तकों का आर्डर देवें। अधिक पुस्तकें मई के बाद ही भेजी जा सकेंगी। गुजराती आठ हजार का प्रथम संस्करण तैयार है, जिसका विमोचन १६ अप्रेल, १९८० को पूज्य श्री कानजीस्वामी की जन्म-जयंती पर उनके ही हाथों से मलाड़ (बम्बई) में होगा।

(२) ग्रीष्मकालीन परीक्षाओं के लिये प्रवेशफार्म ३० अप्रेल, १९८० तक भरकर परीक्षाबोर्ड कार्यालय, ए-४, बापूनगर, जयपुर को भेज देवें। खाली फार्म यहाँ से भेजे जा चुके हैं। जिनके पास न पहुँचे हों, वे शीघ्र मंगा लें।

— मंत्री, श्री वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड

आवश्यकता है :- एक ऐसे प्रौढ़ विद्वान की जो स्थानीय वीतराग-विज्ञान पाठशाला में बच्चों को पढ़ा सके तथा प्रवचन भी कर सकें। वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड, जयपुर से प्रशिक्षित अध्यापक को प्राथमिकता। वेतन लगभग ४००) रुपये तथा अवास एवं नल-बिजली की सुविधा नि:शुल्क।

— अनिलकुमार जैन, मंत्री

द्वारा, श्री मानकचंद धन्नालाल जैन, मु०पो० मुंगावली, जिला गुना (म०प्र)

आवश्यकता है :- एक ऐसे सुयोग्य विद्वान की जो पाठशाला एवं वाचनालय का सफलतापूर्वक संचालन कर सके। वेतन योग्यतानुसार।

— सचिव, पार्श्वनाथ दिगंबर जैन मंदिर, जुन्नारदेव ४८०५५१ (म०प्र०)

संबोधन!

हे जीव! यदि तू नित्य सुख को चाहता है तो प्रथम भेद-विज्ञान द्वारा ज्ञानस्वरूप आत्मा का अपने आत्मा के द्वारा निर्णय कर, सुदेव की सेवा कर, अनुभवी ज्ञानीजन का संग कर, त्रैकालिक ज्ञाता के अवलंबन द्वारा क्रोधादिक का त्याग कर, ज्ञान का अभ्यास कर, ज्ञानधर्म के प्रकाश द्वारा विषयरूपी शत्रु का नाश कर, धर्मरूपी मित्र का मित्र बनकर शरण ले, हिंसा तज, व्यसनों से दूर रह, नीति का सेवन कर।

— पूज्य कानजीस्वामी

पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट द्वारा संचालित

चौदहवाँ शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर वाशीम में

पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर द्वारा संचालित चौदहवाँ शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर इस वर्ष वाशीम (महाराष्ट्र) में दिनांक १९ मई से ७ जून, १९८० तक होना निश्चित हुआ है। उक्त अवसर पर धार्मिक अध्ययन करानेवाले अध्यापक बंधुओं को एवं मुमुक्षु भाईयों को शिक्षण विधि में प्रशिक्षित किया जायेगा।

उक्त शिविर में विद्वद्वर्य पंडित बाबूभाई मेहता फतेपुर, डॉ० हुकमचंद भारिल्ल जयपुर, पंडित रतनचंदजी शास्त्री जयपुर, पंडित ज्ञानचंदजी विदिशा, ब्र० पंडित माणिकचंदजी चँवरे कारंजा, ब्रह्मचारी पंडित माणिकचंदजी भिसीकर बाहुबली, पंडित नेमीचंदजी पाटनी आगरा के पधारने की स्वीकृति प्राप्त हो चुकी है। इनके अतिरिक्त शिक्षण-प्रशिक्षण में सहयोग देनेवाले अनेक प्रशिक्षित अध्यापक भी पधारेंगे।

उक्त अवसर पर समागत विद्वानों के प्रवचनों का लाभ तो प्राप्त होगा ही; साथ में बालकों, प्रौढ़ों और महिलाओं के लिये शिक्षण-कक्षाओं की भी व्यवस्था रहेगी।

धार्मिक शिक्षण-संस्थाओं के अधिकारियों एवं प्रधानाध्यापकों से अनुरोध है कि वे अपने अध्यापक बंधुओं को इस शिविर में अवश्य शामिल करें एवं स्वयं भी पधारें। अध्यापक महोदयों से भी निवेदन है कि वे स्वयं अधिक से अधिक साथियों सहित प्रशिक्षण कक्षाओं में नियमित उपस्थित रहकर अंत में होनेवाली परीक्षा में सम्मिलित होनेवालों के ठहरने व भोजन की नि:शुल्क व्यवस्था रहेगी। **शेष के ठहरने की नि:शुल्क व भोजन की सशुल्क व्यवस्था रहेगी।**

प्रशिक्षण कक्षाओं में सम्मिलित होनेवाले बंधुओं से आग्रह है कि वे निम्नलिखित प्रवेश-प्रतिबंधों पर विशेष ध्यान दें :—

बालबोध-प्रशिक्षण में प्रवेश पाने के लिये बालबोध पाठमाला भाग १, २, ३ की तथा प्रवेशिका-प्रशिक्षण में प्रवेश पाने के लिए वीतराग-विज्ञान पाठमाला भाग १, २, ३ की प्रवेश-प्रतियोगितात्मक लिखित परीक्षा दिनांक १८ मई को दोपहर बाद वाशीम में ली जावेगी, जिसमें प्रथम श्रेणी में उत्तीर्णता प्राप्त करना आवश्यक होगा। अत: प्रवेशार्थी उक्त पुस्तकों की पूरी-पूरी तैयारी करके आवें। जो व्यक्ति उक्त पुस्तकें पहले ही उत्तीर्ण कर चुके हैं, उन्हें यह परीक्षा देना आवश्यक नहीं है। ध्यान रहे प्रवेशिका-प्रशिक्षण में उन्हें ही प्रवेश दिया जाएगा जो बालबोध-प्रशिक्षण प्राप्त कर चुके हों।

आपके यहाँ से कितने व कौन-कौन भाई-बहिन शिविर में पधार रहे हैं, इसकी सूचना हमारे जयपुर कार्यालय को तथा वाशीम ५ मई तक अवश्य भेज देवें ताकि उनके ठहरने एवं भोजनादि की समुचित व्यवस्था की जा सके। ठहरने की व्यवस्था बाकलीवाल हाईस्कूल में की गई है, अत: आगंतुक महानुभाव बस स्टेंड या रेलवे स्टेशन से सीधे वहाँ पहुँचें। खंडवा-काचीगुडा (सेंट्रल रेलवे छोटी लाइन) रेलमार्ग पर वाशीम स्टेशन हैं।

वाशीम पत्र-व्यवहार का पता:—
श्री कन्हैयालालजी बाकलीवाल
मु०पो० वाशीम, जिला अकोला (महाराष्ट्र)
तार : 'बाकलीवाल', फोन : २७

डॉ० हुकमचंद भारिल्ल
श्री टोडरमल स्मारक भवन
ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४
फोन : ६३५८१

अभिमत

पू० स्वामीजी के प्रवचनों से प्रभावित होकर
नैरोबी (अफ्रीका) से श्री कांतिभाई शाह, एडवोकेट लिखते हैं:—

''आपने ता० २८-१-१९८० के मंगल प्रभात में यहाँ से विदा होकर बम्बईनगरी की ओर प्रयाण किया। आपकी प्रतिमा हृदय में बस गयी है और याद दिन-प्रति-दिन तीव्र होती जा रही है। इस अनार्य देश में अधर्मी जीवों को आपने 'भगवान' कहकर संबोधित किया और 'आत्मा सो परमात्मा' का सरल एवं निर्मल मंत्र घोल-घोल कर परोसा। आत्मा की गहराई उलीचने का पुरुषार्थ स्वयं को ही करना है; तथापि अनुभव ने बताया कि देव-गुरु की संगति ने पुरुषार्थ को दूना किया है।×××

आपश्री के आशीर्वाद के साथ 'बहिनश्री वचनामृत' पढ़ने का आरंभ किया। शब्द एवं वाक्य दिल को रुचिकर लगे, वहाँ लाल रेखा (underline) की। एक बार वाचन पूरा किया, लगन लगी; और दूसरी बार, तीसरी बार वाचन पूरा किया। देखा तो प्रत्येक वाक्य पर, प्रत्येक शब्द पर लाल रेखा (underline) हो गयी है। प्रत्येक शब्द में अमृत के कुंज भरे हैं। वस्तुतः अमृत का सागर है। अमृत का एक बूँद भी कैसे छोड़ा जाये ? एक-एक शब्द में से अनेक अर्थ निकलते हैं और आत्मा की गहराई में से उत्तर मिलता है। आनंद की लहरें उठती हैं, हृदय को आनंद से भर देती हैं। आनंद का सागर उमड़ता है और उसकी लहरें ठेठ आँख में से अश्रु के प्रपातरूप बहती हैं। ऐसी दशा हुई है कि अश्रु रोकने की शक्ति नहीं रही।

इस पुस्तक में तो चैतन्य-आनंदसागर उछालने की चाबी है। इस महान पुस्तक को इस पंचम काल में प्रगट कर बहिनश्री ने मुमुक्षुओं के लिये मोक्ष का मार्ग स्पष्ट किया है। बहिनश्री को मेरी कोटि-कोटि वंदना। बहिनश्री के प्रति ऋण व्यक्त करने के लिये मेरे पास शब्द नहीं हैं। पुस्तक का वाचन करते समय बार-बार आत्मा के अंदर प्रवेश हो जाता है। ऐसी इस पुस्तक की महिमा है।

वकालत बहुत की—बहुत बड़ी-बड़ी पुस्तकें पढ़ीं; परंतु 'बहिनश्री के वचनामृत' की तुलना में आये—ऐसी पुस्तक जानने में नहीं आयी, वहाँ पढ़ने की तो बात ही कहाँ रही ?'न भूतो, न भविष्यति' ऐसी यह पुस्तक है। स्कूल में, कॉलेज में एवं यूनिवर्सिटी में पर की (दूसरे की) वकालत करना सिखाया, परंतु आज तक कहीं भी स्व की (आत्मा की) वकालत की बात जानने को नहीं मिली। यह पहली पुस्तक है जिसमें स्व की—आत्मा की वकालत की बात जानने को मिली; 'है', 'है' और 'है' यह त्रिकाली सत्य जानने को मिला।

परम पूज्य गुरुदेव ! आपकी दिव्यवाणी सुनने के एवं बहिनश्री के दर्शन करने के लिये अवश्य सोनगढ़ आना है; भावना भायी है तो अवश्य यह लाभ मिलेगा ही। इस बार आपश्री का विहार बहुत लंबा है। पूज्य कहान गुरुदेव से तो मुक्ति का मार्ग मिला है। आपने चारों ओर से मुक्ति का मार्ग प्रकाशित किया है। आपश्री का अपार उपकार है, उसे कैसे भूला जाये ?

प्रबंध संपादक की कलम से

कृपया निम्नलिखित सूचनाओं पर अवश्य ध्यान दें: —

(१) आत्मधर्म के जिन ग्राहकों का चंदा जून माह में समाप्त हो रहा है, उनमें से लगभग १००० ग्राहकों को इसी अंक में मनिआर्डर फार्म भेजे जा रहे हैं। कृपया मनिआर्डर फार्म प्राप्त होते ही उसे शीघ्र भरकर भेज दें।

(२) शेष ग्राहकों को मई एवं जून माह के आत्मधर्म के साथ मनिआर्डर फार्म भेजे जावेंगे। वे भी कृपया मनिआर्डर समय पर भरकर भेजें।

(३) जिन बंधुओं का नये वर्ष का चंदा प्राप्त हुआ है, उन्हें नये ग्राहक नंबर दिये जा रहे हैं। अत: सभी ग्राहक अपने नये नंबर नोट कर लें।

लाडनूं (राज०) से श्री मनोहरलालजी जैन, प्रशासक, जैन विश्वभारती लिखते हैं: —

आत्मधर्म को आपने युग के अनुरूप बनाया है। उसके आने की बाट देखते रहते हैं। और जब आता है, एक साथ ही सब कुछ पढ़ जाना चाहते हैं। क्रमबद्धपर्याय पर आपके लेख पढ़कर अनेक भ्रांतियाँ दूर हुई हैं। आपका विशद विवेचन असंख्य-असंख्य लोगों की मिथ्या मान्यताओं को दूर करने में समर्थ होगा।

उज्जैन (म०प्र०) से श्री शीतलकुमारजी जैन लिखते हैं : —

डॉ० भारिल्लजी ने तत्त्वार्थसूत्र के दूसरे अध्याय के अंतिम सूत्र का क्रमबद्धता के सामंजस्य को आगमानुसार बुद्धिमत्तापूर्वक प्रस्तुत किया है। इस स्पष्टीकरण से पर्याय-निश्चितता के संबंध में शंका की कोई गुंजाइश शेष नहीं रह जाती।

बड़ामलहरा (म०प्र०) से श्री रमेशकुमारजी 'सुदर्शी' लिखते हैं : —

आत्मधर्म का नया अंक पढ़ा, पसंद आया। इस पत्रिका को अध्यात्म-चिंतन की सर्वश्रेष्ठ पत्रिका कहें तो अतिशयोक्ति नहीं होगी, क्योंकि इसमें प्रकाशित समस्त सामग्री उच्चश्रेणी की है। सरल भाषा में होने से इसके लेख सर्वसाधारण की समझ में अति शीघ्र आ जाते हैं।

धामनोद (म०प्र०) से श्री केसरीमलजी जैन, प्रधानाध्यापक, शासकीय मा०विद्यालय लिखते हैं: —

आत्मधर्म का बहुत पुराना पाठक हूँ। पूज्य कानजीस्वामी द्वारा वीतराग-वाणी का प्रसार व्यवहार एवं ज्ञान द्वारा सर्व प्रकार व्यवस्थित रूप से हो रहा है। आत्मधर्म आधुनिक हिंदी के सर्वश्रेष्ठ पत्रों में गिना जाने लगा है। यह सब डॉ० भारिल्लजी की लगन एवं सेवा का फल है।

सागर (म०प्र०) से कु० सुमनलता जैन, एम०ए० लिखती हैं: —

आत्मधर्म ने तो जैनधर्म के सिद्धांतों का एक-एक पेच-पुर्जा खोलकर रख दिया है। इतनी स्पष्ट बात कहीं भी पढ़ने को नहीं मिलती। 'क्रमबद्ध' के प्रकरण में अकालमृत्यु के विषय को इतना स्पष्ट खोला है कि तत्संबंधी सभी शंकाओं की गुत्थियाँ सुलझ जाती हैं।

कहानकथा: महानकथा

①

आलेख अखिल बंसल एम॰ए॰
चित्रकथा - अनंत कुशवाहा

परमपूज्य आध्यात्मिक संत श्री कानजी स्वामी का जन्म वि॰सं॰ 1946 में वैशाख सुदी दूज को रविवार के दिन काठियावाड़ में उमराला ग्राम में स्थानक वासी जैन सम्प्रदाय में हुआ था

मोती-चन्द्र भाई को पुत्र हुआ है!

हां, सुन्दर बालक है.

उजम बाई, तुम भाग्यवान हो!

देखना यह बालक श्रीमाल जाति की श्री वृद्धि करेगा.

तेजस्वी बालक है, बड़ा होकर कोई महापुरुष बनेगा.

एक ज्योतिषी ने शिशु को देख कर कहा.

नाम करण हुआ - 'कहानकुमार'. अल्पावस्था में ही तेजस्वी मुख पर वैराग्य की झलक थी.

कहान बेटा, ये हैं उमराला ग्राम की प्राथमिक शाला के गुरु जी हैं.. प्रणाम करो.

पढ़ने चलोगे कहान बेटे?

शिक्षा का शुभारंभ हुआ.

क्रमशः

Registration. No. RJ-2712

हमारे यहाँ प्राप्त प्रकाशन *

मोक्षशास्त्र	१२-००
समयसार	१२-००
समयसार पद्यानुवाद	०-७०
समयसार कलश टीका	६-००
प्रवचनसार	१२-००
पंचास्तिकाय	७-५०
नियमसार	५-५०
नियमसार पद्यानुवाद	०-४०
अष्टपाहुड़	१०-००
समयसार नाटक	७-५०
समयसार प्रवचन भाग १	६-००
समयसार प्रवचन भाग २	प्रेस में
समयसार प्रवचन भाग ३	५-००
समयसार प्रवचन भाग ४	७-००
आत्मावलोकन	३-००
श्रावकधर्म प्रकाश	३-५०
द्रव्यसंग्रह	१-५०
लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका	०-४०
प्रवचन परमागम	२-५०
धर्म की क्रिया	२-००
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग १	१-५०
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग २	१-५०
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग ३	१-५०
तत्त्वज्ञान तरंगिणी	५-००
अलिंग-ग्रहण प्रवचन	१-६०
वीतराग-विज्ञान भाग ३ (छहढाला पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचन)	१-००
बालपोथी भाग १	०-६०
बालपोथी भाग २	प्रेस में
ज्ञानस्वभाव ज्ञेयस्वभाव	४-००
बालबोध पाठमाला भाग १	०-५०
बालबोध पाठमाला भाग २	०-७०
बालबोध पाठमाला भाग ३	०-७०
वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग १	०-७०
वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग २	१-००
वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग ३	१-००
तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग १	१-२५
तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग २	१-२५
जयपुर (खानियाँ) तत्त्वचर्चा भाग १ व २	३०-००
मोक्षमार्गप्रकाशक	प्रेस में

पंडित टोडरमल : व्यक्तित्व और कर्तृत्व		१०-००
तीर्थंकर महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ		५-००
" " (पॉकेट बुक साइज में हिन्दी में)		२-००
मैं कौन हूँ ?		१-००
तीर्थंकर भगवान महावीर		०-४०
वीतरागी व्यक्तित्व : भगवान महावीर		०-२५
अपने को पहचानिए		०-५०
अर्चना (पूजा संग्रह)		०-४०
मैं ज्ञानानंद स्वभावी हूँ (कैलेंडर)		०-५०
पंडित टोडरमल : जीवन और साहित्य		०-६५
कविवर बनारसीदास : जीवन और साहित्य		०-३०
सत्तास्वरूप		१-७०
सुंदरलेख बालबोध पाठमाला भाग १		प्रेस में
अनेकांत और स्याद्वाद		०-३५
युगपुरुष श्री कानजीस्वामी		१-००
वीतराग-विज्ञान प्रशिक्षण निर्देशिका		३-००
सत्य की खोज (भाग १)		२-००
आचार्य अमृतचंद्र और उनका पुरुषार्थसिद्धयुपाय	साधारण :	२-००
	सजिल्द :	३-००
धर्म के दशलक्षण	साधारण :	४-००
	सजिल्द :	५-००

Licence No.
P. P. 16-S.S.P. Jaipur City Dn.
Licensed to Post
Without Pre-Payment

If undelivered please return to :
प्रबन्ध-संपादक, आत्मधर्म
ए-४, टोडरमल स्मारक भवन, बापूनगर
जयपुर ३०२००४